अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

का वा सा सुरभी देवी गोलोकादागता च या । तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

नारायण उवाच

गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः । गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥२॥
सर्वादिसृष्टेः कथनं कथयामि निशामय । बभूव येन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥३॥
एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात् । गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥४॥
सहसा तत्र रहसि विजहार च कौतुकात् । बभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छापरस्य च ॥५॥
ससृजे सुरभीं देवो लीलया वामपार्श्वतः । वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सानां च मनोरमाम् ॥६॥
दृष्ट्वा सवत्सां सुरभीं रत्नभाण्डे दुदोह सः । क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥७॥
तदुष्णं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम् । सरो बभूव [क]पयसा भाण्डविस्रंसनेन च ॥८॥
दैर्घ्यं च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम् । गोलोकेषु प्रसिद्धं तद्रम्यं क्षीरसरोवरम् ॥९॥

अध्याय ४०

सुरभी की कथा

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! जो सुरभी देवी गोलोक से आयी है, वह कौन है, उसका जन्म और चरित्र सरहस्य बताने की कृपा करें॥१॥

नारायण बोले—वह सुरभी, गोलोक में उत्पन्न गौओं में प्रधान, गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं की आदि देवी और उनकी जननी है॥२॥ उस सर्वादि सृष्टि सुरभी की कथा मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो। पूर्व काल में वृन्दावन नामक वन में उसका जन्म हुआ॥३॥ एक बार राधिका जी के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण कौतुक-वश राधा एवं अन्य गोपियों समेत पुण्य वृन्दावन गये। ॥४॥ वहाँ पहुँचने पर कौतुकवश वे एकान्त में सहसा छिप गये। अनन्तर स्वेच्छापरायण उन्हें दुग्ध-पान करने की इच्छा उत्पन्न हुई॥५॥ उन्होंने उसी क्षण अपने वाम भाग से सुरभी देवी की लीलापूर्वक रचना की जो सवत्सा (बछड़े समेत) दूध देने वाली एवं बछड़ों के साथ अति मनोरम लग रही थी॥६॥ बछड़े समेत सुरभी को देख कर उन्होंने रत्न के पात्र में उसका दोहन किया जो क्षीर सुधा के समान और जन्म मृत्यु का अपहारी भी था॥७॥ पश्चात् उसके उस गर्म-गर्म दुग्ध को गोपी-पति भगवान् कृष्ण ने स्वयं पान किया। पुनः वहाँ उस दुग्ध-पात्र के किसी प्रकार गिर जाने से दुग्ध का सरोवर उत्पन्न हो गया जो चारों ओर से सौ योजन का लम्बा-चौड़ा था और गोलोक में वही रमणीय क्षीरसरोवर के नाम से

क. सहसा।

गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा । रत्नेन रचिता तूर्णं भूता वापीश्वरेच्छया ॥१०॥
बभूवुः कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः । तावत्यो हि सवत्साश्च सुरभीलोमकूपतः ॥११॥
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च संबभूवुरसंख्यकाः । कथिता च गवां सृष्टिस्तया संपूरितं जगत् ॥१२॥
पूजां चकार भगवान्सुरभ्याश्च पुरा मुने । ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥१३॥
दीपान्विता परदिने श्रीकृष्णस्याऽऽज्ञया भवे । बभूव सुरभीपूजा धर्मवक्त्रादिति श्रुतम् ॥१४॥
ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम् । वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते ॥१५॥
ॐ सुरभ्यै नम इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः । सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥१६॥
स्थितं ध्यानं यजुर्वेदे पूजनं सर्वसंमतम् । ऋद्धिदां वृद्धिदां चैव मुक्तिदां सर्वकामदाम् ॥१७॥
लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् । गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥१८॥
पवित्ररूपां पूज्यां च भक्तानां सर्वकामदाम् । यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभीं भजे ॥१९॥
घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवां च वा । शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभीं पूजयेद्द्विजः ॥२०॥
दीपान्विता परदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः । यः पूजयेच्च सुरभीं स च पूज्यो भवेद्भुवि ॥२१॥
एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया । क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरादयः ॥२२॥

प्रख्यात है ॥८-९॥ वही गोपियों की अधीश्वरी श्री राधिका जी की क्रीड़ा की बावली भी हुई जो ईश्वरेच्छया शीघ्र रत्नों से रच दी गयी थी ॥१०॥ अनन्तर सुरभी के लोमकूप से लाखों करोड़ों और उतनी ही बछड़े समेत गौएँ उत्पन्न हुईं जिनके पुत्र पौत्र असंख्य हुए तथा उन्हीं से समस्त जगत् आच्छादित हो गया। इस प्रकार गौओं की सृष्टि मैंने बता दी ॥११-१२॥ हे मुने! पूर्व काल में भगवान् ने सुरभी की पूजा। अनन्तर तीनों लोकों में उसकी दुर्लभ पूजा प्रारम्भ हुई ॥१३॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से दूसरे दिन संसार में उसकी दीपक समेत पूजा हुई, ऐसा धर्म के मुख से मैंने सुना है ॥१४॥ हे महाभाग! अब मैं वेदानुसार उसका ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र और पूजाविधान का क्रम बता रहा हूँ, सुनो ॥१५॥ ओं सुरभ्यै नमः यह छह अक्षर का उसका मन्त्र है, जो एक लाख जप करने से सिद्ध होता है और भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के समान है ॥१६॥ यजुर्वेद में जिस प्रकार उसके ध्यान और सर्वसम्मत पूजन को बताया गया है, उसे कह रहा हूँ, सुनो। जो देवी ऋद्धि, वृद्धि तथा मुक्ति समेत सकल कामनाओं को देने वाली, लक्ष्मी स्वरूप, श्रेष्ठ, राधा की परम सहचरी, गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं की आदि और उनकी जननी, पवित्ररूप, पूज्या, भक्तों की सभी कामनाओं को सफल करने वाली है एवं जिससे समस्त विश्व पावन हुआ है, उस सुरभी देवी की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥१७-१९॥ कलश में, गौ के शिर पर, या गौओं के बाँधने वाले खम्भे, शालग्राम, जल या अग्नि में सुरभी देवी की पूजा ब्राह्मणों को सुसम्पन्न करनी चाहिए ॥२०॥ इस भाँति पूर्वाह्ण में जो भक्तिपूर्वक दीपक समेत सुरभी की पूजा करता है, वह भूतल में पूज्य होता है ॥२१॥ एक बार वाराह अवतार के समय भगवान् की माया ने सहसा क्षीर का अपहरण कर लिया, जिससे देवों को अति चिन्ता उत्पन्न हो गयी ॥२२॥ अनन्तर वे सब उस समय ब्रह्मलोक

ते गत्वा ब्रह्मणो लोकं ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा। तदाज्ञया च सुरभीं तुष्टुवे पाकशासनः ॥२३॥

महेन्द्र उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः। गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके ॥२४॥
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः। नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः ॥२५॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै प्रदात्र्यै सर्वसंपदाम्। श्रीदायै धनदायै च बुद्धिदायै नमो नमः ॥२६॥
शुभदायै [1]प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः। यशोदायै सौख्यदायै धर्मदायै नमो नमः ॥२७॥
स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः। आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ॥२८॥
महेन्द्राय वरं दत्त्वा वाञ्छितं सर्वदुर्लभम्। जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् ॥२९॥
बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद। दुग्धाद्घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च ॥३०॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। स गोमान्धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुण्यवान्भवेत् ॥३१॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् ॥३२॥

में जाकर ब्रह्मा की स्तुति करने लगे। तब ब्रह्मा ने इन्द्र को आज्ञा प्रदान की। जिससे उन्होंने सुरभी की स्तुति की ॥२३॥

महेन्द्र बोले—देवी को नमस्कार है, महादेवी सुरभी को बार-बार नमस्कार है, गौओं के मूल कारण तथा उस जगदम्बिका को नमस्कार है ॥२४॥ राधाजी की प्रिया को नमस्कार है, पद्मा के उस अंश रूप को नमस्कार है, कृष्ण को प्रिया को नमस्कार है, और गौओं की माता को बार-बार नमस्कार है, जो कल्पवृक्ष स्वरूप होकर समस्त सम्पत्ति प्रदान करती है तथा श्री देने वाली, धनप्रदायिनी एवं बुद्धि देने वाली को नमस्कार है ॥२५-२६॥ शुभप्रदा, प्रसन्न तथा गो प्रदान करने वाली को बार-बार नमस्कार है यश देने वाली, सौख्यप्रदा और धर्मप्रदा को बार-बार नमस्कार है ॥२७॥ इस प्रकार इस स्तोत्र के सुनने मात्र से वह जगज्जननी सुरभी अति सन्तुष्ट और हर्षित हो गई। अनन्तर ब्रह्मलोक में उसी स्थान पर उस सनातनी देवी ने प्रकट होकर महेन्द्र को वर प्रदान किया जिससे उनका सर्वदुर्लभ मनोरथ सफल हुआ। अनन्तर वह गोलोक को चली गयी। हे नारद! देवलोग भी अपने-अपने घर चले गये। ॥२८-२९॥ तब जगत् एकाएक दुग्धपूर्ण हो गया। उपरान्त उस दुग्ध से घृत निकला और उसी घृत से यज्ञपूर्ण हुआ जिससे देवों को अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई। ॥३०॥ इस महापुण्य स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह गोमान्, धनवान्, कीर्तिमान् और पुण्यवान् होता है तथा वह मानों समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका एवं सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षित हो गया। फिर इस लोक में सुख भोगकर

---

१ क. ०यै सुभद्रायै गो०

सुचिरं निवसेत्तत्र कुरुते कृष्णसेवनम् । न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत् ॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सुरभ्युपा० तदुत्पत्तितत्पूजादिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग नारायणपरायण । नारायणांश भगवन्ब्रूहि नारायणीं कथाम् ॥१॥
श्रुतं सुरभ्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु पुराविद्भिः प्रशंसितम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम् । तदुत्पत्तिं च तद्ध्यानं स्तोत्रं कवचमुत्तमम् ॥३॥

नारायण उवाच

पुरा कैलासशिखरे भगवन्तं सनातनम् । सिद्धेशं सिद्धिदं सर्वस्वरूपं शंकरं परम् ॥४॥
प्रफुल्लवदनं प्रीतं सस्मितं मुनिभिः स्तुतम् । कुमाराय प्ररोचन्तं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
रासोत्सवरसाख्यानं रासमण्डलवर्णनम् । ॥५॥

वह अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के भवन में जाता है और वहाँ अति चिरकाल तक निवास करते हुए उनकी सेवा करता है। हे ब्रह्मपुत्र! संसार में उसका पुनः जन्म नहीं होता है ॥३१-३३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारदनारायणसंवादविषयक सुरभी के उपाख्यान में उसकी उत्पत्ति और पूजा आदि कथन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

अध्याय ४८

नारायणी कथा, राधोपाख्यान

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे नारायण में लीन रहने वाले! हे नारायण के अंश! हे भगवन्! मुझे नारायणी कथा सुनाने की कृपा कीजिए ॥१॥ मैंने सुरभी का उपाख्यान सुन लिया, जो अत्यन्त मनोहर, समस्त पुराणों में गुप्त और प्राचीनवेत्ताओं से प्रशंसित है ॥२॥ अब मैं श्री राधिका का परमोत्तम आख्यान जिसमें उनकी उत्पत्ति, ध्यान स्तोत्र और उत्तम कवच वर्णित है, सुनना चाहता हूँ ॥३॥

नारायण बोले—पहले समय में (एक बार) कैलाश पर्वत के शिखर पर विराजमान सनातन भगवान् शंकर से, जो सिद्धों के अधीश्वर, सिद्धि प्रदान करने वाले, सब के स्वरूप, श्रेष्ठ, विकसित मुख, प्रसन्न, मन्दहास करते हुए, मुनियों द्वारा संस्तुत तथा कुमार की उत्सुकता बढ़ाते हुए परमात्मा कृष्ण के रासोत्सव के रस का आख्यान तथा रासमण्डल का वर्णन सुना रहे थे, अवसर

तदाख्यानावसाने च प्रस्तावावसरे सती । पप्रच्छ पार्वती स्फीता सस्मिता प्राणवल्लभम् ॥६॥
स्तवनं कुर्वती भीता प्राणेशेन प्रसादिता । प्रोवाच तं महादेवं महादेवी सुरेश्वरी ॥७॥

पार्वत्युवाच

अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् । आगमं निखिलं नाथ श्रुतं सर्वमनुत्तमम् ॥८॥
पाञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगं च योगिनाम् । सिद्धानां सिद्धिशास्त्रं च नानातन्त्रं मनोहरम् ॥९॥
भक्तानां भक्तिशास्त्रं च कृष्णस्य परमात्मनः । देवीनामपि सर्वासां चरितं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥१०॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम् । श्रुतौ श्रुतं प्रशस्तं च राधायाश्च समासतः ॥११॥
त्वन्मुखात्काण्वशाखायां व्यासेनोक्तं वदाधुना । आगमाख्यानकाले च भवता स्वीकृतं पुरा ॥१२॥
नहीश्वरव्याहृतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति । तदुत्पत्तिं च तद्ध्यानं नाम्नो माहात्म्यमुत्तमम् ॥१३॥
पूजाविधानं चरितं स्तोत्रं कवचमुत्तमम् । आराधनविधानं च पूजापद्धतिमीप्सिताम् ॥१४॥
सांप्रतं ब्रूहि भगवन्मां भक्तां भक्तवत्सल । कथं न कथितं पूर्वमागमाख्यानकालतः ॥१५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा नम्रवक्त्रो बभूव सः । पञ्चवक्त्रश्च भगवाञ्छुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥१६॥
स्वसत्यभङ्गभीतश्च मौनीभूय विचिन्तयन् । सस्मार कृष्णं ध्यानेनाभीष्टदेवं कृपानिधिम् ॥१७॥

पाकर सती पार्वती जी ने पूछा जो हर्षमग्न एवं मन्द मुसुकानयुक्त होकर अपने प्राणवल्लभ (शिवजी) की स्तुति कर रही थीं और भयभीत होने पर उन प्राणाधीश्वर का पूर्ण कृपापात्र भी हो चुकी थीं। उन देवाधीश्वरी महादेवी ने महादेव जी से कहा ॥४-७॥

पार्वती बोलीं—मैं श्री राधिका जी का अपूर्व आख्यान सुनना चाहती हूँ, जो पुराणों में अतिदुर्लभ है। हे नाथ! मैंने सम्पूर्ण आगम (शास्त्र), परमोत्तम समस्त पाञ्चरात्र आदि, नीतिशास्त्र, योगियों का योग-शास्त्र, सिद्धों का सिद्धिशास्त्र, अनेक भाँति का मनोहर तन्त्र और परमात्मा श्रीकृष्ण के भक्तों का भक्ति-शास्त्र सुन लिया है तथा उसी भाँति तुम्हारे मुखकमल द्वारा सभी देवियों के चरित भी सुन चुकी हूँ। अब श्री राधिका जी का अनूठा आख्यान सुनना चाहती हूँ, जो वेदों में कथित, तुम्हारे द्वारा प्रशंसित तथा काण्व-शाखा में व्यास द्वारा प्रतिपादित है। आपने पहले ही आगमों (शास्त्रों) के व्याख्यान-काल में यह स्वीकार किया था। ईश्वर (शिव) की व्याहृति (कथन) कभी मिथ्या नहीं होती है। अतः हे भगवन्! हे भक्तवत्सल! अब राधा जी की उत्पत्ति, ध्यान, उनके नाम का उत्तम माहात्म्य, पूजाविधान, चरित, स्तोत्र, उत्तमकवच, आराधना का विधान और मनोवाञ्छित पूजा-पद्धति मुझे बताने की कृपा करें। आगमों (शास्त्रों) के आख्यान के समय से पूर्व आपने इसे क्यों नहीं कहा? पार्वती की ऐसी बातें सुनकर शिवने अपना मुख नीचे कर लिया। भगवान् पञ्चमुख (पांच मुख वाले) शिव के अपने सत्य-भंग के भय से कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गये। ॥८-१६॥ वे मौन होकर विचार करने लगे। उस समय उन्होंने ध्यान द्वारा अपने इष्टदेव एवं कृपा-

तदनु ज्ञानं संप्राप्य स्वार्धाङ्गां तामुवाच सः ॥ ॥१८॥

महादेव उवाच

निषिद्धोऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना । आगमारम्भसमये राधाख्यानप्रसङ्गतः ॥१९॥
मदर्धाङ्गस्वरूपा त्वं न मद्भिन्ना स्वरूपतः । अतोऽनुज्ञां ददौ कृष्णो महयं वक्तुं महेश्वरि ॥२०॥
मदिष्टदेवकान्ताया राधायाश्चरितं सति । अतीव गोपनीयं च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥२१॥
जानामि तदहं दुर्गे सर्वं पूर्वापरं वरम् । यज्जानामि रहस्यं च न तद्ब्रह्मा फणीश्वरः ॥२२॥
न तत्सनत्कुमारश्च न च धर्मः सनातनः । न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुंगवाः ॥२३॥
मत्तो बलवती त्वं च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता । अतस्त्वां गोपनीयं च कथयामि सुरेश्वरि ॥२४॥
शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । चरितं राधिकायाश्च दुर्लभं च सुपुण्यदम् ॥२५॥
पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥२६॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः । स्वेच्छामयश्च भगवान्बभूव रमणोत्सुकः ॥२७॥
[1]रिरंसोस्तस्य जगतां पत्युस्तन्मल्लिकावने । इच्छया च भवेत्सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः । दक्षिणाङ्गं च श्रीकृष्णो वामार्धाङ्गं च राधिका ॥२९॥

निधान भगवान् कृष्ण का स्मरण किया। पश्चात् उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर उन्होंने अपनी उस अर्द्धांगिनी से कहा ॥१७-१८॥

महादेव बोले—आगमों के आख्यान काल में मैं राधाजी का आख्यान वर्णन करने से परमात्मा भगवान् श्री कृष्ण द्वारा रोक दिया गया था ॥१९॥ हे महेश्वरि! तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो और स्वरूपतः मुझसे भिन्न भी नहीं हो, इसीलिए भगवान् कृष्ण ने मुझे तुमसे कहने की अब आज्ञा प्रदान की है ॥२०॥ राधिका जी मेरे इष्ट-देव की प्रेयसी हैं। उनका चरित अत्यन्त गोपनीय, भक्तों को सुखप्रद तथा कृष्णभक्तिप्रदायक है ॥२१॥ हे दुर्गे! मैं उनका सभी पूर्वापर (अगला पिछला) रहस्य जानता हूँ, जिसे ब्रह्मा, शेष, सनत्कुमार, सनातन धर्म, देवराज इन्द्र, श्रेष्ठ मुनिगण, सिद्धेन्द्र, और सिद्धेश्वर नहीं जान पाये हैं ॥२२-२३॥ हे सुरेश्वरि! इसके लिए तुम प्राणत्याग करने को तैयार हो गयी थीं, इसलिए हमसे तुम बलवती हो। मैं इसीलिए ऐसी गोपनीय बातें तुम्हें बता रहा हूँ ॥२४॥ हे दुर्गे! राधा जी का वह परम अद्भुत चरित तुम्हें बता रहा हूँ, जो दुर्लभ और अतिपुण्यदायक है ॥२५॥ पहले समय में गोलोक के रमणीय वृन्दावन के रासमण्डल में सैकड़ों शिखरों से सुशोभित पर्वत के एक भाग में एवं मालती और बेला के जंगल में पुरुषोत्तम जगदीश्वर रत्नसिंहासन पर विराजमान थे। अनन्तर उनस्वेच्छाचारी भगवान् को रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई ॥२६-२७॥ क्योंकि उन्हीं की इच्छा से सभी कुछ होता है। अतः उस बेला के वन में जब जगन्नाथ को रमण करने की इच्छा हुई तब इसी बीच वे दो रूपों में विभक्त हो गये। हे दुर्गे! उनका दाहिना भाग भगवान् श्रीकृष्ण रूप में और अर्द्धांग बायाँ

---

१ क. जगत्प्रसूः । २ क. रमणीं कर्तुमिच्छामि तद्बभूव सुरेश्वरी । इ० ।

बभूव रमणी रम्या रासेशा रमणोत्सुका । अमूल्यरत्नाभरणा रत्नसिंहासनस्थिता ॥३०॥
वह्निशुद्धांशुकाधाना कोटिपूर्णशशिप्रभा । तप्तकाञ्चनवर्णाभा राजिता च स्वतेजसा ॥३१॥
सस्मिता सुदती शुद्धा शरत्पद्मनिभानना । बिभ्रती कबरीं रम्यां मालतीमाल्यमण्डिताम् ॥३२॥
रत्नमालां च दधती ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् । मुक्ताहारेण शुभ्रेण गङ्गाधारानिभेन च ॥३३॥
सयुक्तं वर्तुलोत्तुङ्गं सुमेरुगिरिसंनिभम् । कठिनं सुन्दरं दृश्यं कस्तूरीपत्रचिह्नितम् ॥३४॥
माङ्गल्यं मङ्गलार्हं च स्तनयुग्मं च बिभ्रती । नितम्बश्रोणिभारार्ता नवयौवनसुन्दरी ॥३५॥
कामातुरां सस्मितां तां ददर्श रसिकेश्वरः । दृष्ट्वा कान्तां जगत्कान्तो बभूव रमणोत्सुकः ॥३६॥
दृष्ट्वा रिरंसुं कान्तं च सा दधार हरेः पुरः । तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि ॥३७॥
राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम् । उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च ॥३८॥
भवनं धावनं रासे स्मरत्यालिङ्गनं जपन् । तेन जल्पति संकेतं तत्र राधां स ईश्वरः ॥३९॥
राशब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम् । धाशब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ॥४०॥

भाग राधिका रूप में परिणत हुए ॥२८-२९॥ वह रमणी अतिरमणीक, रास की अधीश्वरी और रमण करने के लिए उत्सुक थी, जो अमूल्य रत्नों के आभूषणों से विभूषित होकर रत्नसिंहासन पर सुशोभित हो रही थी ॥३०॥ उसका वस्त्र अग्नि की भाँति विशुद्ध था, करोड़ों पूर्ण चन्द्रमा की भाँति कान्ति थी, तपाये सुवर्ण के समान रूपरंग था और वह निजी तेज द्वारा विराजित एवं मन्द-मन्द मुसुकाती थी। उसके सुन्दर दांतों की पंक्तियाँ शुद्ध थीं और, शारदीय कमल की भाँति मुख था। वह स्वयं रम्य केशपाश धारण किये, मालती की माला से सुशोभित, ग्रीष्म-कालीन सूर्य की कान्ति के समान प्रदीप्त रत्नमाला और गंगा की धारा के समान स्वच्छ मुक्ताहार पहने थी ॥३१-३३॥ एवं एक में मिले हुए, गोलाकार, सुमेरु पर्वत की भाँति उन्नत, कठोर, सुन्दर, देखने योग्य, कस्तूरीपत्र (चित्रकारी) से अंकित, मंगलनिधि और मंगलयोग्य युगल स्तनों को धारण किये, नितम्ब और श्रोणीभार से थकी-जैसी तथा नयी युवावस्था के नाते परम सुन्दरी थी ॥३४-३५॥ रसिकों के स्वामी तथा जगत्सुन्दर भगवान् कृष्ण कामातुर एवं मन्द मुसुकाती उसे देखकर रमण करने को उत्सुक हो गये। ॥३६॥ उसने भी उन सुन्दर प्रियतम को देखकर उन्हें अपने अंक में धारण कर लिया था। महेश्वरि! प्राचीनवेत्ता इसी कारण उसे राधा कहते हैं ॥३७॥ राधा कृष्ण को भजती हैं और भगवान् कृष्ण राधा को भजते हैं। और वे दोनों आपस में सभी कुछ में समान हैं, ऐसा महात्माओं का कहना है ॥३८॥ रास में भगवान् श्रीकृष्ण उसका रूप धारण करते हैं, साथ में दौड़ते हैं, स्मरण करते हैं, आलिंगन करते हैं, उसी का नाम जपा करते हैं और इसी कारण संकेत स्थान को जाने के लिए राधा से संकेत (इशारा) करते रहते हैं ॥३९॥ इसलिए हे दुर्गे! भगवान् का भक्त रा शब्द का उच्चारण करने से अति दुर्लभ मुक्ति प्राप्त करता है और धा शब्द का उच्चारण करने से वह भगवान् के लोक को दौड़ जाता है ॥४०॥ रास की अधीश्वरी श्री राधा जी

---

१ क. धारयामास सा रत्याऽऽलिङ्गने जपात् । ते० ।

कृष्णवामांशसंभूता राधा रासेश्वरी पुरा । तस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः ॥४१॥
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः । ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च तेन राधा प्रकीर्तिता ॥४२॥
बभूव गोपीसंघश्च राधाया लोमकूपतः । श्रीकृष्णलोमकूपेभ्यो बभूवुः सर्वबल्लवाः ॥४३॥
राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा । तस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ॥४४॥
चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी । तदंशा सिन्धुकन्या च श्वेतद्वीपनिवासिनी ॥४५॥
क्षीरोदशायिनः पत्नी विष्णोर्विषयिणः शिवे । तदंशा सा स्वर्गलक्ष्मीः शक्रसंपत्प्रदायिनी ॥
तदंशा राजलक्ष्मीश्च राजसंपत्प्रदायिनी ॥४६॥
तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणां च गृहे गृहे । [1]दीपाधिष्ठातृदेवी च सा चैव गृहदेवता ॥४७॥
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्णवक्षःस्थलस्थिता । प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः ॥४८॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति। भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ॥४९॥
परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम् । सर्वाद्यं सर्वपूज्यं च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥५०॥
स्वेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् । तद्भिन्नानां च देवानां प्राकृतं रूपमेव च ॥५१॥
तस्य प्राणाधिका राधा बहुसौभाग्यसंयुता । महाविष्णोः प्रसूः सा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥५२॥

भगवान् कृष्ण के बायें भाग से पूर्वकाल में उत्पन्न हुई थीं और देवस्त्रियां उन्हीं के अंश की अंशकलासे उत्पन्न हुईं॥४१॥ एवं आदान (ग्रहण करने) अर्थ में रा शब्द और निर्वाण (मुक्ति) अर्थ में धा शब्द प्रयुक्त होता है। अतः जिसके नाम के उच्चारण से मुक्ति प्राप्त होती है उसे राधा कहते हैं ॥४२॥ राधाजी के लोमकूप से समस्त गोपियाँ और भगवान् श्रीकृष्ण के लोमकूप से निखिल गोपगण उत्पन्न हुए ॥४३॥ राधा के बायें अंश भाग से महालक्ष्मी का जन्म हुआ जो भगवान् की अधिष्ठात्री देवी गृहलक्ष्मी हुई ॥४४॥ वह चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु की पत्नी होकर वैकुण्ठ में निवास करती है। उसके अंश से उत्पन्न सिन्धुकन्या श्वेतद्वीप में निवास करती है तथा क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु की पत्नी है। शिवे ! उसके अंश से उत्पन्न स्वर्गलक्ष्मी इन्द्र को सम्पत्ति देने वाली है। उसी के अंश से राजलक्ष्मी उत्पन्न हुई है जो राजस सम्पत्ति प्रदान करती है ॥४५-४६॥ उसके अंश से उत्पन्न मर्त्य लक्ष्मी गृहस्थों के घर घर में दीपों की अधिष्ठात्री देवी एवं गृहदेवता है॥४७॥ राधा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी होकर उनके वक्षःस्थल पर स्थित रहती हैं और उसी परमात्मा के प्राणों की वह अधिष्ठात्री देवी भी हैं॥४८॥ हे पार्वती ! इसलिए तिनके से लेकर ब्रह्म पर्यन्त सभी को मिथ्या जानकर परब्रह्म राधेश को भजो, जो सत्यस्वरूप, तीनों गुणों से परे, सर्वश्रेष्ठ, परम, परमात्मा, ईश्वर, सबका आदि, सबका पूज्य, इच्छा रहित, प्रकृति से परे, स्वेच्छामय, नित्य- रूप, तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए शरीर धारण करनेवाला है। उससे भिन्न तथा देवताओं का प्राकृत (प्रकृति द्वारा निर्मित) रूप ही है॥४९-५१॥ उनकी राधा उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय है जो अमित सौभाग्य से युक्त है। वही महाविष्णु की जननी और ईश्वरी मूल प्रकृति है ॥५२॥

१क. सस्याधि०।

मानिनीं राधिकां सन्तः सेवन्ते नित्यशः सदा । सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥५३॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः । स्वयं देवी हरेः क्रोडे छायारूपेण कामिनी ॥५४॥
स च द्वादशगोपानां रायणः[1] प्रवरः प्रिये । श्रीकृष्णांशश्च भगवान्विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥५५॥
सुदामशापात्सा देवी गोलोकादागता महीम् । वृषभानुगृहे जाता तन्माता च कलावती ॥५६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० राधोपा० राधोत्पत्तिकथनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

कथं सुदामशापं च सा च देवी ललाभ ह । कथं शशाप भृत्यो हि स्वाभीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभदं भक्तिमुक्तिदम् ॥२॥

उस मानिनी राधिका जी की सेवा सन्त गण सदैव नित्य किया करते हैं क्योंकि उन्हें उनका चरण कमल अति सुलभ है और ब्रह्मा आदि देवों को परम दुर्लभ है ॥५३॥ गोपगण तो राधा के चरण-कमलों को स्वप्न में भी नहीं देख पाते हैं और स्वयं राधा भगवान् के छायारूप की भाँति उनकी गोद में कामिनी होकर स्थित रहती हैं ॥५४॥ हे प्रिये ! बारह गोपों में सर्वप्रधान रायण नामक गोप (वैश्य) था, जो भगवान् श्रीकृष्ण का अंश और भगवान् विष्णु के तुल्य पराक्रमी था ॥५५॥ सुदामा नामक गोप के शाप वश उस देवी राधा ने गोलोक से यहाँ पृथिवी में आकर वृषभानु के घर जन्म लिया था जिनकी माता का नाम कलावती था ॥५६॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत राधोपाख्यान में राधोत्पत्ति कथन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

अध्याय ४९

राधा और सुदामा का परस्पर शाप

पार्वती बोलीं—(हे भगवान्) उस देवी को सुदामा का शाप कैसे हो गया और उस सेवक ने अपनी अभीष्ट देवी को शाप कैसे दे दिया ?

महादेव बोले—हे देवि ! इस परमअद्भुत रहस्य को मैं बता रहा हूं, सुनो, जो सभी पुराणों में गोप्य, शुभप्रद और भुक्ति-मुक्ति का प्रदाता है ॥२॥ एक बार गोलोक के रास-मण्डल में, जो वृन्दावन नामक वन के

---

१ क. रायाण इति ।

एकदा राधिकेशश्च गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गाख्यगिर्येकदेशे वृन्दावने वने ॥३॥
गृहीत्वा विरजां गोपीं सुभाग्यां राधिकासमाम् । क्रीडां चकार भगवान्रत्नभूषणभूषितः ॥४॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते रत्ननिर्माणमण्डपे । अमूल्यरत्नखचितमञ्चके पुष्पतल्पके ॥५॥
कस्तूरीकुङ्कुमारक्ते [1]सुचन्दनसुधूपिते । सुगन्धिमालतीमालासमूहपरिमण्डिते ॥६॥
सुरताद्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । तौ द्वौ परस्परासक्तौ सुखसंभोगतन्द्रितौ ॥७॥
मन्वन्तराणां लक्षश्च कालः परिमितो गतः । गोलोकस्य स्वल्पकाले जन्मादिरहितस्य च ॥८॥
दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वाऽथ जगदुस्तां तु राधिकाम् । श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हरिमीश्वरी ॥९॥
प्रबोधिता च सखिभिः कोपरक्तास्यलोचना । विहाय रत्नालंकारं वह्निशुद्धांशुके शुभे ॥१०॥
क्रीडापद्मं च सद्रत्नामूल्यदर्पणमुज्ज्वलम् । निर्मार्जयामास सती सिन्दूरं चित्रपत्रकम् ॥११॥
प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिभिर्मुखरागमलक्तम् । विस्रस्तकबरीभारा मुक्तकेशी प्रकम्पिता ॥१२॥
शुक्लवस्त्रपरीधाना रूक्षा वेषादिवर्जिता । ययौ यानान्तिकं तूर्णं प्रियालीभिर्निवारिता ॥१३॥
आजुहाव सखीसंघं रोषविस्फुरिताधरा । शश्वत्कम्पान्विताङ्गी सा गोपीभिः परिवारिता ॥१४॥

सौ शिखरों वाले पर्वत के एक प्रदेश में था, विरजा नामक गोपी को लेकर, जो अति भाग्यवती और राधा के समान थी, रत्नों के भूषणों से भूषित भगवान् रमण करने लगे ॥३-४॥ रत्नों के प्रदीपों से संयुक्त उस रत्न-निर्मित मण्डल में अमूल्य रत्नों से खचित पलंग पर पुष्पों की शय्या पर, जो कस्तूरी और कुंकुम से किंचित् रक्त, उत्तम चन्दनों से सुवासित और सुगन्धित मालती पुष्पों की माला से चारों ओर सुशोभित हो रही थी, दोनों लिपटे थे। उन रतिपण्डित दम्पती (स्त्रीपुरुष) को सुरत से विराग नहीं हो रहा था। वे दोनों परस्पर जुटे सुख-सम्भोग से क्लान्त हो रहे थे ॥५-७॥ इतने में एक लाख मन्वन्तर का समय व्यतीत हो गया, जो जन्मादि-रहित गोलोक का अल्प समय होता है ॥८॥ तब चार दूतियों ने इसे जानकर राधाजी से कह दिया। उसे सुनते ही वह ईश्वरी अति रुष्ट हो गयी और उसने भगवान् का त्याग कर दिया ॥९॥ कोप से उसके नेत्र लाल हो गये। सखियों के समझाने पर भी उसने रत्नों के आभूषणों, दोनों अग्नि-विशुद्ध वस्त्रों, क्रीडाकमल, उत्तम रत्न के बने हुए अमूल्य एवं उज्ज्वलाकार दर्पण को त्याग दिया, सिन्दूर एवं चित्र-पत्र को मिटा दिया और मुखराग तथा महावर को अञ्जलियों के जल से धो दिया। केशपाश (जूड़े) को खोलकर केशों को इधर-उधर अस्त-व्यस्त कर (फैला) दिया और काँपने लगी ॥१०-१२॥ फिर श्वेत वस्त्र पहनकर शृंगार रहित रूखा वेष कर लिया। प्रिय सखियों के मना करने पर भी उन लोगों का कहना न मान कर बड़ी शीघ्रता से यान (विमान) के पास पहुँच गयी और वहीं से सभी सखी वृन्दों को बुलाने लगी। उस समय उसके अधरोष्ठ क्रोध से काँप रहे थे, सारा शरीर निरन्तर काँप रहा था और गोपियाँ उसके चारों ओर घेरे खड़ी थीं। भक्तिपूर्वक वे गोपियाँ कातर भाव से विनय-प्रार्थना कर रहीं

१क. सुगन्धिचन्दनाञ्चिते ।

ताभिर्भक्त्या नताभिश्च कातराभिश्च संस्तुता । आरुरोह रथं दिव्यममूल्यं रत्ननिर्मितम् ॥१५॥
दशयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तच्छतयोजनम् । सहस्रचक्रयुक्तं च नानाचित्रसमन्वितम् ॥१६॥
नानाविचित्रवसनैः सूक्ष्मैः क्षौमैर्विराजितम् । अमूल्यरत्ननिर्माणदर्पणैः परिशोभितम् ॥१७॥
मणीन्द्रजालमालाभैः पुष्पमालासहस्रकैः । सद्रत्नकलशैर्युक्तं रम्यैर्मन्दिरकोटिभिः ॥१८॥
त्रिलक्षकोटिभिः सार्धं गोपीभिश्च प्रियालिभिः । ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये ॥१९॥
श्रुत्वा कोलाहलं गोपः सुदामा कृष्णपार्षदः । कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः सार्धं पलायितः ॥२०॥
भयेन कृष्णः संत्रस्तो विहाय विरजां सतीम् । स्वप्रेममग्नः कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः ॥२१॥
सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य स्वहृदि क्रुधा । राधाप्रकोपभीता च प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम् ॥२२॥
विरजालिगणास्तत्र भयविह्वलकातराः । प्रययुः शरणं साध्वीं विरजां तत्क्षणं भिया ॥२३॥
गोलोके सा सरिद्रूपा जाता वै शैलकन्यके । कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥२४॥
गोलोकं वेष्टयामास परिखेव मनोहरा । बभूवुः क्षुद्रनद्यश्च तदाऽन्या गोप्य एव च ॥२५॥
सर्वा नद्यस्तदंशाश्च प्रतिविश्वेषु सुन्दरि । इमे सप्त समुद्राश्च विरजानन्दना भुवि ॥२६॥
अथाऽऽगत्य महाभागा राधा रासेश्वरी परा । न दृष्ट्वा विरजां कृष्णं स्वगृहं च पुनर्ययौ ॥२७॥

थीं। किन्तु, कुछ भी ध्यान न देकर राधाजी उस अमूल्य दिव्य रथ पर जा बैठीं, जो रत्नों द्वारा निर्मित, एक सहस्र योजन का लम्बा और दश योजन का चौड़ा था ॥१३-१५॥ उसमें एक सहस्र चक्के तथा अनेक भाँति के चित्र लगे थे। वह अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र और सूक्ष्म रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित, अमूल्य रत्नों के बने दर्पणों से (चारों ओर) सुशोभित, उत्तम मणिसमूहों की माला और सहस्रों पुष्पों की मालाओं से सुरचित एवं उत्तम रत्नों के बने रमणीक कलशों वाले करोड़ों मन्दिरों से युक्त था। उस पर साथ में तीन लाख करोड़ प्रिय गोपियाँ जा बैठीं। हे प्रिये ! उसी सुमनोमालि नामक रथ पर बैठ कर उसने प्रस्थान कर दिया, जिसका कोलाहल सुनकर भगवान् श्री कृष्ण के पार्षद सुदामा ने गोपों के साथ दौड़ते हुए वहाँ पहुँचकर कृष्ण को सावधान कर दिया। अनन्तर भगवान् कृष्ण ने भयभीत होकर विरजा को (अपने पास से) पृथक् कर दिया और उसके प्रेम में मग्न होने के नाते स्वयं भी तिरोहित हो गये। सती विरजा ने समय जान कर अपने हृदय में क्रोधपूर्ण विचार तो किया, किन्तु राधिका जी के महाकोप से भयभीत होकर वह संभल न सकीं, उसी क्षण प्राण छोड़ दिया। ॥१६-२२॥ विरजा की सखियाँ भी भयाकुल एवं कातर भाव से उसी समय सती विरजा की ही शरण गयीं। किन्तु हे शैलकन्यके ! वह (विरजा) गोलोक में नदी रूप धारण कर प्रवाहित हो गई। गोलोक में करोड़ योजन की चौड़ी और करोड़ योजन की लम्बी होकर वह मनोहर परिखा (खाई) की भाँति उसे चारों ओर से घेरने लगी। हे सुन्दरि! अन्य गोपियाँ, जो उसकी सखी थीं, छोटी-छोटी नदियाँ हो गयीं ॥२३--२५॥ प्रत्येक विश्व में प्रवाहित होने वाली समस्त नदियाँ उसी के ही अंश से उत्पन्न हैं ॥२६॥ भूतल पर स्थित ये सातों समुद्र विरजा के ही नन्दन (पुत्र) हैं। अनन्तर महाभाग एवं रास की अधिष्ठात्री देवी राधिका जी वहाँ आकर विरजा और कृष्ण को न देखकर पुनः अपने भवन को लौट गयीं।

जगाम कृष्णस्तां राधां गोपालैरष्टभिः सह। गोपीभिर्द्वारि युक्ताभिर्वारितोऽपि पुनः पुनः ॥२८॥
दृष्ट्वा कृष्णं च सा देवी भर्त्सयामास तं तदा। सुदामा भर्त्सयामास तां तथा कृष्णसंनिधौ ॥२९॥
क्रुद्धा शशाप सा देवी सुदामानं सुरेश्वरी। गच्छ त्वमासुरीं योनिं गच्छ दूरमतो द्रुतम् ॥३०॥
शशाप तां सुदामा च त्वमितो गच्छ भारतम्। भव गोपी गोपकन्या मुख्याभिः स्वाभिरेव च ॥३१॥
तत्र ते कृष्णविच्छेदो भविष्यति शतं समाः। तत्र भारावतरणं भगवांश्च करिष्यति ॥३२॥
इति शप्त्वा सुदामाऽसौ प्रणम्य जननीं हरिम्। साश्रुनेत्रो मोहयुक्तस्ततो गन्तुं समुद्यतः ॥३३॥
राधा जगाम तत्पश्चात्साश्रुनेत्राऽतिविह्वला। वत्स क्व यासीत्युच्चार्य पुत्रविच्छेदकातरा ॥३४॥
कृष्णस्तां बोधयामास विद्यया च कृपानिधिः। शीघ्रं संप्राप्स्यसि सुतं मा रुदस्त्वं वरानने ॥३५॥
स चासुरः शङ्खचूडो बभूव तुलसीपतिः। मच्छूलभिन्नकायेन गोलोकं वै जगाम सः ॥३६॥
राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती। वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह ॥३७॥
अयोनिसंभवा देवी वायुगर्भा कलावती। सुषुवे मायया वायुं सा तत्राऽऽविर्बभूव ह ॥३८॥
अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्। सार्धं रायणवैश्येन तत्संबन्धं चकार सः ॥३९॥
छायां संस्थाप्य तद्गेहे साऽन्तर्धानमवाप ह। बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह ॥४०॥

पश्चात् भगवान् कृष्ण आठ गोपों के साथ राधिका जी के महल पहुँचे वहाँ दरवाजे पर द्वारपाल रूप में खड़ी रहने वाली गोपियों के बार-बार रोकने पर भी कृष्ण भीतर चले ही गये, किन्तु उन्हें देखते ही श्री राधिका जी डाँटने-फटकारने लगीं। उधर कृष्ण के साथ खड़े हुए सुदामा गोप ने भी राधा जी को कुछ कहा, जिससे क्रुद्ध होकर उस सुरेश्वरी ने सुदामा को शाप दिया कि—'यहाँ से दूर असुर योनि को शीघ्र प्राप्त हो'। ॥२७-३०॥ सुदामा ने भी उन्हें शाप दिया—'तुम यहाँ से भारतभूमि पर जाओ और वहाँ अपनी सखियों समेत गोप कन्या होने पर तुम्हें कृष्ण का सौ वर्ष का वियोग प्राप्त होगा। वहाँ भगवान् अवतरित होकर पृथ्वी का भार उतारेंगे' ॥३१-३२॥ इस प्रकार शाप देने के पश्चात् सुदामा, माता (राधिका) और भगवान् कृष्ण को प्रणाम कर मोहवश आँखों में आँसू भरकर जाने को तैयार हो गया ॥३३॥ उसके पीछे राधिका भी सजलनयन तथा अति व्याकुल होती हुई चलने लगीं। उस समय पुत्र-वियोग से कातर होकर 'हे वत्स! कहाँ जा रहे हो।' ऐसा कहने लगीं ॥३४॥ अनन्तर भगवान् कृपानिधान कृष्ण ने विद्या द्वारा उन्हें सचेत किया और कहा—'हे वरानने! रुदन मत करो! तुम्हारा पुत्र तुम्हें शीघ्र मिलेगा ॥३५॥ वही शंखचूड़ नामक असुर होकर तुलसी का पति हुआ, जो हमारे शूल द्वारा शरीर त्यागकर पुनः गोलोक चला गया' ॥३६॥ वाराहकल्प में श्री राधिका जी भारत के गोकुल गाँव में वृषभानु वैश्य (गोप) के यहाँ उनकी कन्या होकर अवतरित हुईं, जो अयोनिजा थीं। उनकी माता कलावती के गर्भ में केवल वायु स्थित था। जिस समय माया द्वारा वे वायु का जन्म दे रही थीं उसी बीच वे वहाँ पुत्री होकर प्रकट हो गईं ॥३७-३८॥ बारह वर्ष बीतने पर उनकी नयी युवावस्था देख कर किसी रायण नामक वैश्य के साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया गया ॥३९॥ विवाह के समय राधा जी अपने पिता के घर अपनी छाया रखकर, जिससे उस वैश्य का विवाह हुआ था, स्वयं अन्तर्हित हो गईं ॥४०॥ चौदह वर्ष

गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतेश्छलेन च । जगाम गोकुलं कृष्णः शिशुरूपी जगत्पतिः ॥४१॥
कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः । गोलोके गोपकृष्णांशः संबन्धात्कृष्णमातुलः ॥४२॥
कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने । [1]विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः ॥४३॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः । स्वयं राधा हरेः क्रोडे छाया रायणमन्दिरे ॥४४॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । राधिकाचरणाम्भोजदर्शनार्थी च पुष्करे ॥४५॥
भारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले । ददर्श तत्पदाम्भोजं तपसस्तत्फलेन च ॥४६॥
किंचित्कालं स वै कृष्णः पुण्ये वृन्दावने वने । रेमे गोलोकनाथश्च राधया सह भारते ॥४७॥
ततः सुदामशापेन विच्छेदश्च बभूव ह । तत्र भारावतरणं भूमेः कृष्णश्चकार सः ॥४८॥
शताब्दे समतीते तु तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । ददर्श कृष्णं सा राधा स च तां च परस्परम् ॥४९॥
ततो जगाम गोलोकं राधया सह तत्त्ववित् । कलावती यशोदा च पर्यगाद्राधया सह ॥५०॥
वृषभानुश्च नन्दश्च ययौ गोलोकमुत्तमम् । सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः ॥५१॥

व्यतीत होने पर जगत्पति कृष्ण, जो उस समय शिशु रूप में थे, कंस के भय से कपट द्वारा गोकुल गाँव लाये गये ॥४१॥ भगवान् कृष्ण की माता यशोदा का वह रायण सहोदर (सगा भाई) है, जो गोलोक में कृष्ण का अंश और यहाँ के सम्बन्ध से उनका मामा है ॥४२॥ वृन्दावन नामक पवित्र वन में जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने कृष्ण के साथ राधा का सविधि विवाह कराया था ॥४३॥ जिस राधा के चरणकमल को गोपगण स्वप्न में भी नहीं देख सकते थे, वही स्वयं राधा भगवान् श्रीकृष्ण के अंक में स्थित थीं और उनकी छाया रायण के भवन में विराजमान थी ॥४४॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा ने श्री राधिका जी के चरणकमल के दर्शनार्थ पुष्कर क्षेत्र में साठ सहस्र वर्ष तक तप किया था। इस कारण पृथ्वी का भार उतारने के लिए हुए कृष्णावतार में नन्द गोकुल गाँव में उन्हें उस तपस्या के फलस्वरूप उनके चरणकमल का दर्शन हुआ ॥४५-४६॥ भारत के पुण्य वृन्दावन में गोलोकाधीश्वर कृष्ण भगवान् ने राधा के साथ कुछ ही काल तक रमण किया। उसके उपरान्त सुदामा के शापवश उन दोनों का वियोग हो गया। उसी समय कृष्ण ने पृथ्वी का भार उतारा ॥४७-४८॥ सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त तीर्थ यात्रा के अवसर पर परस्पर राधा ने पुनः कृष्ण को देखा और कृष्ण ने राधा को ॥४९॥ अनन्तर तत्त्ववेत्ता श्रीकृष्ण श्री राधिका जी को साथ लेकर अपने गोलोक चले गये और राधा के साथ उनकी माता कलावती तथा (कृष्ण माता) यशोदा भी चली गयीं ॥५०॥ उस परमोत्तम गोलोक में वृषभानु, नन्द तथा सभी गोप-गोपियाँ जो वहाँ (गोलोक) से आयी थीं, चली गयीं ॥५१॥ हे पार्वती ! वहाँ साथ रहने के नाते छाया रूप में आये हुए गोप और गोपियों की मुक्ति हो गयी। वे (गोपियाँ) वहाँ (गोलोक में) भगवान् कृष्ण के साथ रमण

१क. विहारं का° ।

छायागोपाश्च गोप्यश्च प्रापुर्मुक्ति च संनिधौ । रेमिरे ताश्च तत्रैव सार्धं कृष्णेन पार्वति ॥५२॥
षट्त्रिंशल्लक्षकोटयश्च गोप्यो गोपाश्च तत्समाः । गोलोकं प्रययुर्मुक्ताः सार्धं कृष्णेन राधया ॥५३॥
द्रोणः प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तत्प्रिया धरा । संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम् ॥५४॥
वसुदेवः कश्यपश्च देवकी चादितिः सती । देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः ॥५५॥
पितॄणां मानसी कन्या राधामाता कलावती । वसुदामाऽपि गोलोकाद् वृषभानुः समाययौ ॥५६॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् । संपत्करं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥५७॥
श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥५८॥
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सरस्वती । गङ्गा च तुलसी चैव देव्यो नारायणप्रियाः ॥५९॥
श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदर्धाङ्गसमुद्भवा । तेजसा वयसा साध्वी रूपेण च गुणेन च ॥६०॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं वदेद्बुधः । व्यतिक्रमे ब्रह्महत्यां लभते नात्र संशयः ॥६१॥
कार्तिके पूर्णिमायां च गोलोके रासमण्डले । चकार पूजां राधायास्तत्संबन्धिमहोत्सवम् ॥६२॥
[1]सद्रत्नगुटिकायाश्च कृत्वा तत्कवचं हरिः । दधार कण्ठे बाहौ च दक्षिणे सह गोपकैः ॥६३॥

करने लगीं । छत्तीस लाख करोड़ गोपियाँ और उतने ही गोपगण कृष्ण और राधा के साथ मुक्त होकर गोलोक गये थे ॥५२-५३॥ उनमें से प्रजापति द्रोण नन्द हुए थे और उनकी पत्नी धरा यशोदा हुई थीं, उन्होंने अपनी पूर्व तपस्या द्वारा परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त किया था ॥५४॥ कश्यप जी वसुदेव हुए थे और उनकी पत्नी अदिति देवकी हुई थीं । प्रत्येक कल्प में देवों की माता और पिता स्वभावानुसार जन्म-धारण किया करते हैं ॥५५॥ पितरों की मानसी कन्या राधा की माता कलावती हुई थीं और गोलोक से आकर वसुदामा वृषभानु हुए थे ॥५६॥ हे दुर्गे! इस प्रकार मैंने तुम्हें राधिका जी का परमोत्तम आख्यान सुना दिया, जो सम्पत्तिप्रद, पापहारी और पुत्र-पौत्र की अति वृद्धि करने वाला है ॥५७॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने दो भुजाओं वाला और चार भुजाओं वाला, दो रूप धारण किये जिसमें चार भुजाओं से वे वैकुण्ठ में रहते हैं और दो-भुजाओं से स्वयं गोलोक में ॥५८॥ चार भुजा वाले भगवान् की महालक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी इतनी पत्नियां हैं और ये देवियाँ भगवान् को प्रिय हैं ॥५९॥ और भगवान् श्री कृष्ण की पत्नी उनके आधे अंग से उत्पन्न होने वाली केवल सती राधिका जी हैं, जो तेज, अवस्था, रूप और गुण में उन्हीं के समान हैं ॥६०॥ इस कारण विद्वान् को चाहिये कि पहले राधा कहकर पश्चात् कृष्ण कहें अन्यथा व्यतिक्रम (उल्टा) होने पर ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है इसमें संशय नहीं ॥६१॥ कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन गोलोक के रासमण्डल में भगवान् श्रीकृष्ण ने राधाजी की पूजा और तत्सम्बन्धी महोत्सव किया ॥६२॥ भगवान् ने उत्तम रत्नों की गुटिका (यंत्र की तावीज) में राधा कवच रख कर गोपों के साथ अपने कण्ठ और दाहिनी भुजा में धारण किया ॥६३॥ भक्तिपूर्वक ध्यान करते हुए उन्होंने उनके इस स्तोत्र का निर्माण किया। भगवान् मधुसूदन ने राधा जी का चबाया

१ख. °घुटि°।

कृत्वा ध्यानं च पूजां च स्तोत्रमेतच्चकार सः । राधार्चिततताम्बूलं चखाद मधुसूदनः ॥६४॥
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान्प्रभुः । परस्पराभीष्टदेवे भेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥६५॥
द्वितीये पूजिता सा च धर्मेण ब्रह्मणा मया । अनन्तवासुकिभ्यां च रविणा शशिना पुरा ॥६६॥
महेन्द्रेण च रुद्रैश्च मनुना मानवेन च । सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सर्वविश्वैश्च पूजिता ॥६७॥
तृतीये पूजिता सा च सप्तद्वीपेश्वरेण च । भारते च सुयज्ञेन पुत्रैर्मित्रैर्मुदाऽन्वितैः ॥६८॥
ब्राह्मणेनाभिशप्तेन दैवदोषेण भूभृता । व्याधिग्रस्तेन हस्तेन दुःखिना च विदूयता ॥६९॥
संप्राप राज्यं भ्रष्टश्रीः स च राधावरेण च । स्तोत्रेण ब्रह्मदत्तेन स्तुत्वा च परमेश्वरीम् ॥७०॥
[1]अभेद्यं कवचं तस्याः कण्ठे बाहौ दधार सः । ध्यात्वा चकार पूजां च पुष्करे शतवत्सरान् ॥७१॥
अन्ते जगाम गोलोकं रत्नयानेन भूमिपः । इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरिसं० राधोपा० राधायाः सुदामशापादिकथनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

हुआ पान खाया ॥६४॥ इस प्रकार राधा भगवान् कृष्ण की पूज्या हैं और राधा के श्रीकृष्ण । अतः परस्पर अभीष्ट देव में भेद बुद्धि रखनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है ॥६५॥ पूर्वकाल में दूसरे उनकी पूजा धर्म, ब्रह्मा, मैंने, अनन्तनाग, वासुकी नाग, सूर्य और चन्द्रमा, महेन्द्र, ग्यारहों रुद्रगण, मानव मनु, सुरेन्द्रों और मुनीन्द्रों ने की, इस भाँति वे समस्त विश्व द्वारा पूजित हुईं ॥६६-६७॥ तीसरे उनकी पूजा भारत के सप्तद्वीपाधीश्वर सुयज्ञ ने अपने पुत्रों और मित्रों समेत सहर्ष सम्पन्न किया ॥६८॥ दैव (भाग्य) दोषवश राजा को ब्राह्मण द्वारा शाप हो गया, जिससे उनके हाथ में रोग उत्पन्न हो गया । उस रोगपीड़ित हाथ द्वारा दुःख का अनुभव करते हुए राजा ने ब्रह्मा के दिये हुए स्तोत्र द्वारा परमेश्वरी राधा जी की आराधना की, जिससे उनके वरदान द्वारा उसे पुनः भ्रष्ट (नष्ट) राजलक्ष्मी प्राप्त हो गयी ॥६९-७०॥ फिर राधा जी के अभेद्य कवच को अपने कण्ठ तथा बाहु में धारण कर पुष्कर क्षेत्र में सौ वर्ष तक ध्यानपूर्वक उनकी पूजा की और अन्त में वह राजा रत्नखचित विमान द्वारा गोलोक चला गया। इस प्रकार मैंने तुम्हें सभी कुछ सुना दिया है । अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ?॥७१-७२॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारदनारायणसंवादविषयक हरगौरीसंवाद के राधोपाख्यान में राधा को सुदामा द्वारा शापादि कथन नामक उन्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

१क. आद्यं च कं ।

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

को वा सुयज्ञो नृपतिः कुत्र वंशे बभूव सः । कथं विप्राभिशप्तश्च कथं संप्राप राधिकाम् ॥१॥
सर्वात्मनश्च कृष्णस्य पत्नीं श्रीकृष्णपूजिताम् । कथं विण्मूत्रधारी च सिषेवे परमेश्वरीम् ॥२॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । यत्पादाम्भोजरेणूनां लब्धये पुष्करे विभुः ॥३॥
कथं ददर्श तां देवीं महालक्ष्मीं पुरा[1] सतीम् । दुर्दर्शामपि युष्माकं दृश्या साऽभूत्कथं नृणाम् ॥४॥
कथं त्रिजगतां धाता तस्मै तत्कवचं ददौ । ध्यानं पूजाविधिं स्तोत्रं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥५॥

महादेव उवाच

स्वायंभुवो मनुर्देवि मनूनामादिरेव च । ब्रह्मात्मजस्तपस्वी च शतरूपापतिः प्रभुः ॥६॥
उत्तानपादस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रो ध्रुव एव च । ध्रुवस्य कीर्तिर्विख्याता त्रैलोक्ये शैलकन्यके ॥७॥
उत्कलस्तस्य पुत्रश्च नारायणपरायणः । सहस्रं राजसूयानां पुष्करे स चकार ह ॥८॥
सर्वाणि रत्नपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । अमूल्यरत्नराशीनां सहस्रं तेजसाऽऽवृतम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा यज्ञान्ते सुमहोत्सवे । ॥९॥

अध्याय ५०

सुयज्ञ की कथा

पार्वती बोलीं—सुयज्ञ राजा कौन थे, वे किस वंश में उत्पन्न हुए थे एवं उन्हें ब्राह्मणशाप कैसे प्राप्त हुआ और उन्होंने राधिका जी को कैसे प्राप्त किया, जो समस्त के आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी एवं उनके द्वारा पूजित हुई हैं। उस परमेश्वरी की सेवा उस विष्ठा-मूत्रधारी ने कैसे की ? ॥१-२॥ जिसके चरणकमल की धूलि प्राप्त करने के लिए समर्थ ब्रह्मा ने पूर्वकाल में साठ सहस्र वर्ष तप किया था, उस महालक्ष्मी सती देवी को उसने कैसे देख लिया ? जो आप लोगों को भी अति कठिनाई से दिखायी देती हैं, उन्हें मनुष्य कैसे देख सका ? और तीनों लोकों के विधाता ने राधा जी का कवच, ध्यान, पूजा-विधान और स्तोत्र उसे कैसे दे दिया ? यह मुझे बताने की कृपा करें॥३-५॥

श्री महादेव बोले—मनुवंश में सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु ने जन्म ग्रहण किया, जो ब्रह्मा के सुपुत्र, तपस्वी, समर्थ एवं शतरूपा के पति थे ॥६॥ उनके पुत्र राजा उत्तानपाद और उनके पुत्र ध्रुव हुए। हे शैलकन्यके ! ध्रुव की कीर्ति विख्यात है। उसका उत्कल नामक पुत्र भगवान् नारायण में सतत लीन रहा करता था। उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में सहस्र राजसूय नामक यज्ञ सुसम्पन्न किया ॥७-८॥ उसमें उन्होंने ब्राह्मणों को समस्त रत्नों के पात्र और अमूल्य रत्नों की सहस्र राशियाँ, जो अत्यन्त प्रकाशपूर्ण (देदीप्यमान) थीं, सहर्ष प्रदान कीं ॥९॥

१क. परां।

दृष्ट्वा तच्छोभनं यज्ञं विधाता जगतां प्रिये। सुयज्ञं नाम नृपतिं चकार सुरसंसदि ॥१०॥
स च राजा सुयज्ञश्च मनुवंशसमुद्भवः। अन्नदाता रत्नदाता दाता वै सर्वसंपदाम् ॥११॥
दशलक्षं गवां चैव रत्नशृङ्गपरिच्छदम्। नित्यं ददौ स विप्रेभ्यो मुदा युक्तः सदक्षिणम् ॥१२॥
गवां द्वादशलक्षाणां ददौ नित्यं मुदाऽन्वितः। सुपक्वानि च मांसानि ब्राह्मणेभ्यश्च पार्वति ॥१३॥
षट्कोटीर्ब्राह्मणानां च भोजयामास नित्यशः। चोष्यैश्चव्यैर्लेह्यपेयै रतितृप्तं दिने दिने ॥१४॥
विप्रलक्षं सूपकारं भोजयामास तत्परम्। पूर्णमन्नं च सूपाक्तं सगव्यं मांसवर्जितम् ॥१५॥
विप्रा भोजनकाले च मनुवंशसमुद्भवम्। न तुष्टुवुः सुयज्ञं च तुष्टुवुस्तत्पितॄंश्च ते ॥१६॥
दिने सुयज्ञयज्ञान्ते षट्त्रिंशल्लक्षकोटयः। चक्रुः सुभोजनं विप्राश्चातितृप्ताश्च सुन्दरि ॥१७॥
गृहीतानि च रत्नानि स्वगृहं वोढुमक्षमाः। वृषलेभ्यो ददुः किंचित्किंचित्पथि च तत्यजुः ॥१८॥
विप्राणां भोजनान्ते च विप्रान्येभ्यो ददौ नृपः। तथाप्युर्वरितं तत्र चान्नराशिसहस्रकम् ॥१९॥
कृत्वा यज्ञं महाबाहुः समुवास स्वसंसदि। रत्नेन्द्रसारसंकॢप्तच्छत्रकोटिसमन्विते ॥२०॥
रत्नसिंहासने रम्ये पट्टवस्त्रैः सुसंस्कृते। चन्दनादिसुसंसृष्टे रम्ये चन्दनपल्लवैः ॥२१॥
शाखायुक्तैः पूर्णकुम्भै रम्भावृक्षैश्च शोभिते। चन्दनागुरुकस्तूरीघनसिन्दूरसंस्कृते ॥२२॥
वसुवासवचन्द्रेन्द्ररुद्रादित्यसमन्विते। मुनिनारदमन्वादिब्रह्मविष्णुशिवान्विते ॥२३॥

हे प्रिये! उस महोत्सव में यज्ञ की समाप्ति के अवसर पर ब्राह्मणों को उस प्रकार का दान देते हुए राजा को तथा उसके सुशोभित यज्ञ को देखकर जगत् के विधाता ब्रह्मा ने देवसभा में उसका 'सुयज्ञ' नामकरण किया, जो मनुवंश में उत्पन्न हुआ था ॥१०½॥ वह नित्य अन्नदान, रत्नदान, समस्त सम्पत्ति का दान तथा लाख गौओं का दान, जिनकी सींगे रत्नों से सुशोभित रहती थीं, दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को सहर्ष अर्पित करता था। बारह लाख गोदान नित्य सहर्ष सम्पन्न करता था। हे पार्वती! पके मांस ब्राह्मणों को अर्पित करता था ॥११-१३॥ नित्य छह करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराता था जो चूसने, चबाने, स्वाद लेने और पीने योग्य पदार्थों से नित्य तृप्त होते थे। उसके यहाँ एक लाख ब्राह्मण भण्डारी भोजन करते थे ॥१४½॥ गौ के घी, दूध और दही से अतिपूर्ण भोजन रहता था ॥१५॥ भोजन के समय ब्राह्मण लोग मनुवंश में उत्पन्न उस सुयज्ञ की प्रशंसा न करके उसके पितरों की प्रशंसा करते थे। यज्ञ की समाप्ति के दिन सुयज्ञ ने छत्तीस लाख करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराया। हे सुन्दरि! उत्तम भोजन से तृप्त हुए उन ब्राह्मणों को इतना रत्न दान दिया, जो उसे अपने घर ले जाने में वे सभी असमर्थ हो गये—उनमें से कुछ लोगों ने शूद्रों को कुछ दे दिया और कुछ रास्ते में छोड़ दिया। उन ब्राह्मणों के अतिरिक्त और अन्य ब्राह्मणों को उसने भोजन कराया। तिस पर भी सहस्रों अन्न की राशियाँ अछूती पड़ी रह गईं ॥१६-१९॥ यज्ञ के उपरान्त उस महाबाहु ने अपनी सभा में उस रत्नसिंहासन के ऊपर, जो उत्तम रत्नों के सार भाग से विभूषित, कोटि छत्रों से युक्त, रमणीक, रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित, चन्दनों से आर्द्र (गीला), शाखा (डाली) युक्त चन्दन के पल्लवों, पूर्ण कलशों और केले के वृक्षों से सुशोभित एवं चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कपूर तथा सिन्दूर से विभूषित था, पदार्पण किया ॥२०-२२॥ सिंहासन के समीप वसुगण, इन्द्र, चन्द्र, रुद्रगण और

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्र एकः समाययौ। रूक्षो मलिनवासाश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥२४॥
रत्नसिंहासनस्थं च माल्यचन्दनचर्चितम्। राजानमाशिषं चक्रे सस्मितः संपुटाञ्जलिः ॥२५॥
प्रणनाम नृपस्तं च नोत्तस्थौ किंचिदेव हि। सभासदश्च नोत्तस्थुर्जहसुः स्वल्पमेव च ॥२६॥
मुनिभ्योऽपि च देवेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमः। शशाप नृपतिं क्रोधात्तत्रातिष्ठन्निरङ्कुशः ॥२७॥
गच्छ दूरमतो राज्याद्भ्रष्टश्रीर्भव पामर। भवाचिरं गलत्कुष्ठी बुद्धिहीनोऽप्युपद्रुतः ॥२८॥
इत्युक्त्वा कम्पितः क्रोधात्सभास्थाञ्छप्तुमुद्यतः। ये तत्र जहसुः सर्वे समुत्तस्थुः सभासदः ॥२९॥
सर्वे चक्रुः प्रणामं ते क्रोधं तत्याज वाडवः ॥३०॥

प्रणम्याऽऽगत्य राजा तं रुरोद भयकातरः। निःससार सभामध्याद्धृदयेन विदूयता ॥३१॥
ब्राह्मणो गूढरूपी च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। तत्पश्चान्मुनयः सर्वे प्रययुर्भयकातराः ॥३२॥
हे विप्र तिष्ठ तिष्ठेति समुच्चार्य पुनः पुनः। पुलहश्च पुलस्त्यश्च प्रचेता भृगुरङ्गिराः ॥३३॥
मरीचिः कश्यपश्चैव वसिष्ठः क्रतुरेव च। शुक्रो बृहस्पतिश्चैव दुर्वासा लोमशस्तथा ॥३४॥
गौतमश्च कणादश्च कण्वः कात्यायनः कठः। पाणिनिर्जाजलिश्चैव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥३५॥
तैत्तिरिश्चाऽऽप्यापिशलिर्मार्कण्डेयो महातपाः। सनकश्च सनन्दश्च वोढुः पैलः सनातनः ॥३६॥
सनत्कुमारो भगवान्नरनारायणावृषी। पराशरो जरत्कारुः संवर्तः करभस्तथा ॥३७॥

सूर्य तथा मुनि नारद, मनु आदि, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव विराजमान थे। उसी बीच वहाँ एक ब्राह्मण आया ॥२३॥ वह रूखा तथा मैले-कुचैले वस्त्र पहने था। उसके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे ॥२४॥ उस रत्न-सिंहासन पर विभूषित एवं मालाओं और चन्दनों से चर्चित राजा को उस ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर तथा मुसकराकर आशीर्वाद दिया, किन्तु राजा ने न उस ब्राह्मण को प्रणाम किया और न वह स्वागतार्थ आसन से कुछ उठा ही। वहां के सभासद गण भी आसन से नहीं उठे, अपितु कुछ हास्य (मजाक) ही करने लगे ॥२५-२६॥ वह श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनियों और देवताओं को नमस्कार करने के अनन्तर क्रुद्ध होने के कारण वहाँ निर्भय खड़ा रहा और उसने राजा को शाप दे दिया—'हे पामर (नीच)! तुम्हारी श्री नष्ट हो जाय, अतः राज्य से तुम दूर चले जाओ, तुम्हें शीघ्र गलत्कुष्ठ का रोग हो जाय, तुम बुद्धिरहित और उपद्रवी होगे, इतना कहकर क्रोध से काँपता हुआ वह ब्राह्मण सभासदों को भी शाप देने के लिए तैयार हो गया। अनन्तर जो जहाँ हँस रहे थे, वे सभी सभासद लोग वहां से उठकर उसे प्रणाम करने लगे। (यह देख) वह ब्राह्मण भी क्रोधरहित हो गया ॥२७-३०॥ भय से कातर होकर राजा ने भी प्रणाम किया और वहाँ आकर रुदन करने लगा। उपरान्त हार्दिक वेदना का अनुभव करते हुए वह ब्राह्मण सभा-मध्य से निकल गया। उस ब्राह्मण का अतिगूढ़ रूप था क्योंकि ब्रह्मतेज से वह देदीप्यमान हो रहा था। उसके पश्चात् सभी मुनिगण भय से दुःखी होकर —'हे ब्राह्मण! ठहरो-ठहरो! ऐसा बार-बार कहते हुए उसके पीछे-पीछे जाने लगे। पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, अंगिरा, मरीचि, कश्यप, वशिष्ठ, क्रतु, शुक्र, बृहस्पति, दुर्वासा, लोमश, गौतम, कणाद, कण्व, कात्यायन, कठ, पाणिनि, जाजलि, शृंगी ऋषि, विभाण्डक, तैत्तिरि, आपिशलि, महातपस्वी मार्कण्डेय, सनक, सनन्द, वोढु, पैल, सनातन, सनत्कुमार, भगवान् नर-नारायण ऋषि, पराशर, जरत्कारु, संवर्त,

भरद्वाजश्च वाल्मीकिरौर्वश्च च्यवनस्तथा । अगस्त्योऽत्रिरुतथ्यश्च संकर्ताऽऽस्तीक आसुरिः ॥३८॥
शिलालिर्लाङ्गलिश्चैव शाकल्यः शाकटायनः । गर्गो वत्सः पञ्चशिखो जमदग्निश्च देवलः ॥३९॥
जैगीषव्यो वामदेवो बालखिल्यादयस्तथा । शक्तिर्दक्षः कर्दमश्च प्रस्कन्नः कपिलस्तथा ॥४०॥
विश्वामित्रश्च कौत्सश्चाप्यूचीकोऽप्यघमर्षणः । एते चान्ये च मुनयः पितरोऽग्निर्हरिप्रियाः[1] ॥४१॥
दिक्पाला देवताः सर्वा विप्रं पश्चात्समाययुः । ब्राह्मणं बोधयामासुर्वासयामासुरीश्वरि ॥४२॥
समूचुस्तं क्रमेणैव नीतिं नीतिविशारदाः ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

किमूचुर्ब्राह्मणं ब्रह्मन्ब्राह्मणा ब्रह्मणः सुताः । नीतिज्ञा नीतिवचनं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

महादेव उवाच

संतोष्य तं ब्राह्मणं च स्तवेन विनयेन च । क्रमेण वक्तुमारेभे मुनिसंघो वरानने ॥२॥

करभ, भरद्वाज, वाल्मीकि, और्व, च्यवन, अगस्त्य, अत्रि, उतथ्य, संकर्ता, आस्तीक, आसुरि, शिलालि, लांगलि, शाकल्य, शाकटायन, गर्ग, वत्स, पंचशिख, जमदग्नि, देवल, जैगीषव्य, वामदेव और बालखिल्यादि, शक्ति, दक्ष, कर्दमप्रस्कन्न, कपिल, विश्वामित्र, कौत्स, ऊचीक एवं अघमर्षण तथा इनके अतिरिक्त अन्य मुनिवृन्द, पितरगण, अग्नि, हरिप्रिया, दिक्पाल और सभी देवगण भी वहाँ आये । हे ईश्वरि! वे सब, ब्राह्मण को रोककर समझाने लगे। वे नीति-कुशल लोग क्रमशः नीति की बात कहने लगे ॥३१-४३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक हरगौरी-संवाद के राधोपाख्यान में सुयज्ञोपाख्यान-कथन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥५०॥

अध्याय ५१

ऋषियों द्वारा पाप एवं पाप-फल का वर्णन

पार्वती बोलीं—हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा के पुत्र उन ब्राह्मणों ने, जो नीति के ज्ञाता थे, उस ब्राह्मण से कौनसी नीति की बातें कही थीं, मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

महादेव बोले—हे वरानने! उस मुनिवृन्द ने क्रमशः अनुनय-विनयपूर्वक उस ब्राह्मण को संतुष्ट करते हुए (नीति की बातें) कहना आरम्भ किया ॥२॥

---

१ क. °हविःप्रियाः ।

सनत्कुमार उवाच

त्वत्पश्चादागता लक्ष्मीः कीर्तिः सत्त्वं यशस्तथा । सुशीलं च महैश्वर्यं पितरोऽग्निः सुरास्तथा ॥३॥
आगता नृपगेहेभ्यः कृत्वा भ्रष्टश्रियं नृपम् । भव तुष्टो द्विजश्रेष्ठ चाऽऽशुतोषश्च वाडवः ॥४॥
ब्राह्मणानां तु हृदयं कोमलं नवनीतवत् । शुद्धं सुनिर्मलं चैव मार्जितं तपसा मुने ॥५॥
क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् । आशिषं कुरु तस्मै त्वं पवित्रपदरेणुना ॥६॥

भृगुरुवाच

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य देवाश्च वह्निश्चैव तथैव च ॥७॥
निराशाः प्रतिगच्छन्ति चातिथेरप्रतिग्रहात् । क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥८॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः । तुल्यदोषो भवत्येतैर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥९॥

पुलस्त्य उवाच

पश्यन्ति ये वक्रदृष्टया चातिथिं गृहमागतम् । दत्त्वा स्वपापं तस्मै तत्पुण्यमादाय गच्छति ॥१०॥
क्षमस्व नृपदोषं च गच्छ वत्स यथासुखम् । राजा स्वकर्मदोषेण नोत्तस्थौ तत्क्षमां कुरु ॥११॥

सनत्कुमार बोले—तुम्हारे पीछे ही लक्ष्मी, कीर्ति, सत्त्व (बल), यश, सुशील, महान् ऐश्वर्य, पितरगण और अग्नि समेत सभी देवता लोग राजा को श्री (राजलक्ष्मी) हीन कर उसके घर से चले आये। हे द्विजश्रेष्ठ! अब प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि ब्राह्मण आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न) होते हैं। हे मुने! ब्राह्मणों का हृदय नवनीत (मक्खन) की भाँति कोमल होता है और तप द्वारा मार्जन (सफाई) करने के नाते शुद्ध एवं अति निर्मल होता है ॥३-५॥ अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो और आकर राजा का घर चरणरेणु (धूलि) द्वारा शुद्ध करते हुए उसे आशीर्वाद प्रदान करो ॥६॥

भृगु बोले—अतिथि (अभ्यागत) जिसके घर से निराश होकर लौट जाते हैं, उसके पितरगण, देवगण और अग्नि ये सभी उस अतिथि के प्रतिग्रह (दान-भिक्षा) न लेने के कारण उस घर से निराश होकर चले जाते हैं। अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो! और चल कर राजा का घर शुद्ध करो, क्योंकि जिसके यहाँ अतिथि की पूजा नहीं होती है, उसे स्त्रीहत्या, गोहत्या, कृतघ्नता, ब्रह्महत्या और गुरुपत्नीगामित्व के समान दोष लगता है ॥७-९॥

पुलस्त्य बोले—घर आये हुए अभ्यागत को जो टेढ़ी आँख से देखता है, वह अतिथि उसे अपना समस्त पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है ॥१०॥ अतः हे वत्स! राजा का यह दोष क्षमा करो, सुखपूर्वक जाओ, राजा अपने कर्मदोषवश (स्वागतार्थ) नहीं उठ सके, उसे क्षमा करो ॥११॥

पुलह उवाच

राजश्रिया विद्यया वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते । विप्रस्त्रिसंध्यहीनो यः श्रीहीनः क्षत्रियो भवेत् ॥१२॥
एकादशीविहीनश्च विष्णुनैवेद्यवञ्चितः । क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥१३॥

ऋतुरुवाच

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा शूद्र एव च । दीक्षाहीनो भवेत्सोऽपि ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥१४॥
धनहीनः पुत्रहीनो भार्याहीनो भवेद्ध्रुवम् । क्षमस्वाऽऽगच्छ भगवञ्छुद्धं कुरु नृपालयम् ॥१५॥

अङ्गिरा उवाच

ज्ञानवान्ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते । वृषवाहो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु ॥१६॥

मरीचिरुवाच

पुण्यक्षेत्रे भारते च देवं च ब्राह्मणं गुरुम् । विष्णुभक्तिविहीनश्च स भवेद्योऽवमन्यते ॥१७॥

कश्यप उवाच

वैष्णवं ब्राह्मणं दृष्ट्वा यो हसत्यवमन्यते । विष्णुमन्त्रविहीनश्च तत्पूजाविरतो भवेत् ॥१८॥

प्रचेता उवाच

अतिथिं ब्राह्मणं दृष्ट्वा नाभ्युत्थानं करोति यः । पितृमातृभक्तिहीनः स भवेद्भारते भुवि ॥१९॥

पुलह बोले—जो क्षत्रिय या ब्राह्मण राजलक्ष्मी अथवा विद्या द्वारा किसी ब्राह्मण का अनादर करता है, वह क्षत्रिय श्रीहीन होता और ब्राह्मण तीनों कालकी संध्या (कर्म) से हीन, एकादशीव्रतविहीन एवं भगवान् विष्णु के नैवेद्य से वञ्चित हो जाता है। अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो, आओ राजा का घर पवित्र करो॥१२-१३॥

ऋतु बोले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, जो कोई ब्राह्मण का अपमान करता है, वह दीक्षाहीन, धनरहित, पुत्रहीन और निश्चित स्त्रीहीन हो जाता है। अतः हे भगवन्! क्षमा करो और चलकर राजा का गृह शुद्ध करो। ॥१४-१५॥

अंगिरा बोले—ब्राह्मण ज्ञानी होकर यदि किसी ब्राह्मण का अपमान करता है, वह भारत में सात जन्मों तक 'वृषवाह' (बैल द्वारा किसी भाँति जीविका चलाने वाला) होता है॥१६॥

मरीचि बोले—इस पुण्य प्रदेश भारत में जो देवता, ब्राह्मण तथा गुरु का अपमान करता है, वह भगवान् विष्णु की भक्ति से सदा रहित हो जाता है॥१७॥

कश्यप बोले—जो वैष्णव ब्राह्मण को देखकर हँसता है और उसका अपमान करता है वह भगवान् विष्णु के मन्त्र और उनकी पूजा से विरत हो जाता है॥१८॥

प्रचेता बोले—ब्राह्मण अभ्यागत को देखकर जो (आसन से) उठता नहीं है, वह भारत-भूतल पर माता-पिता

प्राप्नोति [1]कौञ्जरीं योनिं स मूढः सप्तजन्मसु। शीघ्रं गच्छ द्विजश्रेष्ठ राज्ञे देह्याशिषः शुभाः ॥२०॥

दुर्वासा उवाच

गुरुं वा ब्राह्मणं वाऽपि देवताप्रतिमामपि। दृष्ट्वा शीघ्रं न प्रणमेत्स भवेत्सूकरो भुवि ॥२१॥
मिथ्यासाक्षी च भवति तथा विश्वासघातकः। क्षमस्व सर्वमस्माकमातिथ्यग्रहणं कुरु ॥२२॥

राजोवाच

छलेन कथितो धर्मो युष्माभिर्मुनिपुंगवैः। सर्वं कृत्वा च विस्पष्टं मां मूढं बोधयन्त्वहो ॥२३॥
स्त्रीघ्नगोघ्नकृतघ्नानां गुरुस्त्रीगामिनां तथा। ब्रह्मघ्नानां च को दोषो ब्रूत मां योगिनां वराः ॥२४॥

वसिष्ठ उवाच

कामतो गोवधे राजन्वर्षं तीर्थं भ्रमेन्नरः। यवयावकभोजी च करेण च जलं पिबेत् ॥२५॥
तदा धेनुशतं दिव्यं ब्राह्मणेभ्यः सदक्षिणम्। दत्त्वा मुञ्चति पापाच्च भोजयित्वा शतं द्विजान् ॥२६॥
प्रायश्चित्ते तु वै चीर्णे सर्वपापान्न मुच्यते। पापावशेषाद्भवति दुःखी चाण्डाल एव च ॥२७॥
आतिदेशिकहत्यायां तदर्धं फलमश्नुते। प्रायश्चित्तानुकल्पेन सर्वपापान्न मुच्यते ॥२८॥

की भक्ति से विहीन होता है ॥१९॥ और वह मूर्ख सात जन्मों तक हाथी की योनि में उत्पन्न होता है। हे द्विजश्रेष्ठ! शीघ्र चलकर राजा को शुभाशिष प्रदान करो ॥२०॥

दुर्वासा बोले—गुरु, ब्राह्मण और देवता की प्रतिमा देखकर जो सहसा प्रणाम नहीं करता है, वह पृथिवी पर सूकर होकर उत्पन्न होता है, तथा झूठा गवाह और विश्वासघाती होता है। अतः हम लोगों का सब (अपराध) क्षमा करके (राजा द्वारा की गयी) अतिथि-सेवा स्वीकार करो ॥२१-२२॥

राजा बोले—आप मुनीन्द्रों ने धर्म का प्रतिपादन छल से किया है, अतः अत्यन्त स्पष्ट रूप से मुझ मूर्ख को बोध कराने की कृपा कीजिये ॥२३॥ हे श्रेष्ठ योगिवृन्द! स्त्रीहत्या एवं गोहत्या करने वाले, कृतघ्न, गुरु-स्त्री के साथ भोग करने वाले और ब्राह्मण की हत्या करने वाले को कौन दोष होता है, मुझे बताने की कृपा करें ॥२४॥

वसिष्ठ बोले—हे राजन्! गोवध की इच्छा रख कर जो गोहत्या करता है, उस मनुष्यको एक वर्ष तीर्थाटन करना चाहिए और यव की लप्सी का भोजन करते हुए हाथ से जल पीना चाहिए ॥२५॥ पश्चात्दक्षिणा समेत सौ उत्तम गौएँ ब्राह्मणों को समर्पित करके सौ ब्राह्मणों को भोजन कराये, इससे वह पापमुक्त हो जाता है ॥२६॥ किन्तु, प्रायश्चित्त करने पर भी वह समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है और इसी कारण उसे दुःखी और चाण्डाल होना पड़ता है ॥२७॥ यदि किसी के कहने से वह हत्या करता है, तो उसे आधे फल का भागी होना पड़ता है और वह भी प्रायश्चित्त करने से समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है ॥२८॥

---

१ क. सौकरीं।

शुक्र उवाच

गोहत्याद्विगुणं पापं स्त्रीहत्यायां भवेद्ध्रुवम् । षष्टिवर्षसहस्राणि कालसूत्रे वसेद्ध्रुवम् ॥२९॥
ततो भवेन्महापापी सूकरः सप्तजन्मसु । ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्मन्यतः शुचिः ॥३०॥

बृहस्पतिरुवाच

स्त्रीहत्याद्विगुणं पापं ब्रह्महत्याकृतो भवेत् । लक्षवर्षं महाघोरे कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम् ॥३१॥
ततो भवेन्महापापी विष्ठाकीटः शताब्दकम् । ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्मन्यतः शुचिः ॥३२॥

गौतम उवाच

दोषः कृतघ्ने राजेन्द्र ब्रह्महत्याचतुर्गुणः । निष्कृतिर्नास्ति वेदोक्ता कृतघ्नानां च निश्चितम् ॥३३॥

राजोवाच

लक्षणं च कृतघ्नानां वद वेदविदां वर । कृतघ्नः कतिधा प्रोक्तः केषु को दोष एव च ॥३४॥

ऋष्यशृङ्ग उवाच

कृतघ्नाः षोडशविधाः सामवेदे निरूपिताः । सर्वः प्रत्येकदोषेण प्रत्येकं फलमश्नुते ॥३५॥
कृते सत्ये च पुण्ये च स्वधर्मे तपसि स्थिते । प्रतिज्ञायां च दाने च स्वगोष्ठीपरिपालने ॥३६॥
गुरुकृत्ये देवकृत्ये काम्यकृत्ये द्विजार्चने । नित्यकृत्ये च विश्वासे परधर्मप्रदानयोः ॥३७॥
एतान्यो हन्ति पापिष्ठः स कृतघ्न इति स्मृतः । एतेषां सन्ति लोकाश्च तज्जन्म भिन्नयोनिषु ॥३८॥

शुक्र बोले—गोहत्या से दुगुना पाप स्त्रीहत्या में होता है, जिससे उसे कालसूत्र नामक नरक में साठ सहस्र वर्ष तक निश्चित ही रहना पड़ता है ॥२९॥ पश्चात् वह महापापी सात जन्मों तक सूकर और उसके पश्चात् सात जन्मों तक सर्प होता है, अनन्तर शुद्ध हो जाता है ॥३०॥

बृहस्पति बोले—स्त्री हत्या का दुगुना पाप ब्रह्महत्या करने से होता है, जिससे उसे लाख वर्ष तक महाघोर कुम्भीपाक नरक में निश्चित रूप से रहना पड़ता है ॥३१॥ अनन्तर वह महापापी सौ वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा और सात जन्मों तक सर्प होता है, पश्चात् शुद्ध हो जाता है ॥३२॥

गौतम बोले—हे राजेन्द्र ! कृतघ्न को ब्रह्महत्या से चौगुना पाप लगता है और यह निश्चित है कि—वेदों में कृतघ्नों का उद्धार नहीं बताया गया है ॥३३॥

राजा बोले—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! कृतघ्नों का लक्षण, उसका भेद और किसे कौन दोष होता है, बताने की कृपा करें ॥३४॥

ऋष्यश्रृंग बोले—सामवेद में सोलह प्रकार के कृतघ्न बताये गये हैं, सबको प्रत्येक दोष का प्रत्येक फल भोगना पड़ता है ॥३५॥ उपकार, सत्य, पुण्य कार्य, अपने धर्म एवं तपस्या में लगे रहने, प्रतिज्ञा, दान और अपनी गोष्ठी (संख्या) का पालन करने में तथा गुरु कार्य, देवकार्य, काम्यकर्म, ब्राह्मण-पूजन, नित्य कर्म, के विश्वास, परधर्म और प्रदान कर्म में जो पापिष्ठ बाधक होता है, वही कृतघ्न कहा गया है। इन पापियों के

यान्यांश्च नरकांस्ते च यान्ति राजेन्द्र पापिनः। ते ते च नरकाः सन्ति यमलोके सुनिश्चितम् ॥३९॥

सुयज्ञ उवाच

के किं कृत्वा कृतघ्नाश्च कान्कान्गच्छन्ति रौरवान्। प्रत्येकं श्रोतुमिच्छामि वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥४०॥

कात्यायन उवाच

कृत्वा शपथरूपं च सत्यं हन्ति न पालयेत्। स कृतघ्नः कालसूत्रे वसेदेव चतुर्युगम् ॥४१॥
सप्तजन्मसु काकश्च सप्तजन्मसु पेचकः। ततः शूद्रो महाव्याधिः सप्तजन्मस्वतः शुचिः ॥४२॥

सनन्दन उवाच

पुण्यं कृत्वा वदत्येव कीर्तिवर्धनहेतुना। स कृतघ्नस्तप्तसूर्म्यां वसत्येव युगत्रयम् ॥४३॥
पञ्चजन्मसु मण्डूकस्त्रिषु जन्मसु कर्कटः। तदा मूको महाव्याधिर्दरिद्रश्च ततः शुचिः ॥४४॥

सनातन उवाच

स्वधर्मं हन्ति यो विप्रः संध्यात्रयविवर्जितः। अतर्पयंश्च यस्नाति विष्णुनैवेद्यवर्जितः ॥४५॥
विष्णुपूजाविष्णुभक्तिविष्णुमन्त्रविहीनकः। एकादशीविहीनः श्रीकृष्णजन्मदिने तथा ॥४६॥
शिवरात्रौ च यो भुङ्क्ते श्रीरामनवमीदिने। पितृकृत्यादिहीनो यः स कृतघ्न इति स्मृतः ॥४७॥

पृथक्-पृथक् लोक हैं और भिन्न-भिन्न योनियों में इनके जन्म होते हैं॥३६-३८॥. हे राजेन्द्र! ये पापी जिन-जिन नरकों में जाते हैं, वे यमलोक में निश्चित रूप से विद्यमान हैं॥३९॥

सुयज्ञ बोले—हे प्रभो! वे (मनुष्य) क्या-क्या करके कृतघ्न होते हैं और किस-किस रौरव नरक में जाते हैं, मुझे प्रत्येक को सुनने की इच्छा है, अतः बताने की कृपा करें॥४०॥

कात्यायन बोले—शपथ (सौगन्ध) करके सत्य का पालन न कर जो उसका हनन करता है, वह कृतघ्न चार युगों तक कालसूत्र नामक नरक में निश्चित रहता है॥४१॥ अनन्तर सात जन्मों तक कौवा, सात जन्मों तक उल्लू पक्षी और सात जन्मों तक महारोगी शूद्र होता है अनन्तर शुद्ध हो जाता है॥४२॥

सनन्दन बोले—पुण्य करके जो अपनी कीर्ति बढ़ाने के हेतु उसे कहता है, वह कृतघ्न तप्तसूर्मी नामक नरक में तीन युग तक निवास करता है॥४३॥ पश्चात् पांच जन्मों तक मेढक, तीन जन्मों तक केंकड़ा होकर गूंगा, महारोगी एवं दरिद्र मनुष्य होता है, अनन्तर शुद्ध होता है॥४४॥

सनातन बोले—जो ब्राह्मण तीनों काल के सन्ध्या कर्म से रहित होकर स्वधर्म का हनन करता है, बिना तर्पण का स्नान करता है, भगवान् विष्णु को बिना भोग लगाये भोजन करता है, विष्णु की पूजा, विष्णु की भक्ति, विष्णु के मन्त्र तथा एकादशी व्रत से हीन रहकर भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म दिन (भादों की कृष्णाष्टमी), शिवरात्रि और रामनवमी के दिन भोजन करता है एवं पितरों के कृत्य (कर्म) से हीन रहता है, वह 'कृतघ्न' कहा जाता है॥४५-४७॥ इन पापों से वह कुम्भीपाक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक निवास करता है।

कुम्भीपाके वसत्येव [1]यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततश्चाण्डालतां याति सप्तजन्मसु निश्चितम् ॥४८॥
शतजन्मनि गृध्रश्च शतजन्मनि सूकरः । ततो भवेद्ब्राह्मणश्च शूद्राणां सूपकारकः ॥४९॥
ततो भवेज्जन्मसप्त ब्राह्मणो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च भवेत्सप्तसु जन्मसु ॥५०॥
द्विजो भूत्वा सप्तजनौ भारते वृषलीपतिः । भुक्त्वा स्वभोगलेशं च भ्रमित्वा याति रौरवम् ॥५१॥
पुनः पुनः पापयोनिं नरकं च पुनः पुनः । ततो भवेद्गर्दभश्च मार्जारः पञ्चजन्मसु ॥५२॥
पञ्चजन्मसु मण्डूको भवेच्छुद्धस्ततः क्रमात् ॥५३॥

सुयज्ञ उवाच–

शूद्राणां सूपकरणे शूद्राणां शवदाहने । शूद्रान्नभोजने वाऽपि शूद्रस्त्रीगमनेऽपि च ॥५४॥
ब्राह्मणानां च को दोषो वृषाणां वाहने तथा । एतान्सर्वान्समालोच्य ब्रूहि मां निश्चितं मुने ॥५५॥

पराशर उवाच–

शूद्राणां सूपकारश्च यो विप्रो ज्ञानदुर्बलः । असिपत्रे वसत्येव [2]युगानामेकसप्ततिः ॥५६॥
ततो भवेद्गर्दभश्च मूषकः सप्तजन्मसु । तैलकीटः सप्तजन्मस्वतः शुद्धो भवेन्नरः ॥५७॥

जरत्कारुरुवाच

भृत्यद्वारा स्वयं वाऽपि यो विप्रो वृषवाहकः । स कृतघ्न इति ख्यातः प्रसिद्धो भारते नृप ॥५८॥

पश्चात् निश्चित रूप से सात जन्मों तक चाण्डाल, सौ जन्मों तक गीध और सौ जन्मों तक सूकर होने के उपरान्त शूद्रों का भण्डारी होता है। अनन्तर सात जन्मों तक वृषवाहक (बैल पर लादने का कार्यकारी), सात जन्मों तक शूद्रों के शव (मुर्दे) का दाह करने वाला, पुनः सात जन्मों तक भारत में वृषली (शूद्रा स्त्री) का पति ब्राह्मण होता है। इस भाँति अपने भोग के लेशमात्र शेष रहने पर रौरव नरक का चक्कर काटते हुए पुनः पापयोनि में जन्म ग्रहण करता है और पश्चात् पुनः नरक प्राप्त करता है। उपरान्त पाँच जन्मों तक गधा, बिल्ली और पाँच जन्मों तक मेढक होकर अन्त में क्रमशः शुद्ध होता है॥४८-५३॥

सुयज्ञ बोले—मुने ! शूद्रों के भण्डारी होने, उनके शव (मुर्दे) के दाही बनने, शूद्रों के अन्न भोजन करने और उनकी स्त्रियों से भोग करने पर तथा वृषवाहक होने पर ब्राह्मणों को कौन दोष लगता है, इन्हें विवेचनापूर्वक बताने की कृपा करें॥५४-५५॥

पराशर बोले—ज्ञान की दुर्बलता के कारण जो ब्राह्मण शूद्रों का भण्डारी होता है, वह इकहत्तर युगों तक असिपत्र नामक नरक में रहता है॥५६॥ पश्चात् सात जन्मों तक गधा, चूहा और सात जन्मों तक तेल का कीड़ा होकर अन्त में वह शुद्ध हो जाता है॥५७॥

जरत्कारु बोले—हे नृप ! जो ब्राह्मण भृत्य (नौकर) द्वारा अथवा स्वयं वृषवाहक (बैलों द्वारा जोतने लादने) का कार्य करता है, वह भारत में 'कृतघ्न' रूप में प्रख्यात होता है॥५८॥ बैलों को (उस कार्य में) नित्य मारने-पीटने

---

१ क.. ०वच्चन्द्रदिवाकरौ। २ क. ०र्विंशतिः।

ब्रह्महत्यासमं पापं तन्नित्यं वृषताडने। वृषपृष्ठे भारदानात्पापं तद्द्विगुणं भवेत् ॥५९॥
सूर्यातपे वाहयेद्यः क्षुधितं तृषितं वृषम्। ब्रह्महत्याशतं पापं लभते नात्र संशयः ॥६०॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं विप्राणां वृषवाहिनाम्। पितरो नैव गृह्णन्ति तेषां श्राद्धं च तर्पणम् ॥६१॥
देवता नहि गृह्णन्ति तेषां पुष्पं फलं जलम्। ददाति यदि दम्भेन विपाताय प्रकल्पते ॥६२॥
यो भुङ्क्ते कामतोऽन्नं च ब्राह्मणो वृषवाहिनाम्। नाधिकारो भवेत्तेषां पितृदेवार्चने नृप ॥६३॥
[1]लालाकुण्डे वसत्येव [2]यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विष्ठा भक्ष्यं मूत्रजलं तत्र तस्य भवेद्ध्रुवम् ॥६४॥
त्रिसंध्यं ताडयेत्तं च शूलेन यमकिंकरः। उल्कां ददाति मुखतः सूच्या कृन्तति संततम् ॥६५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्। ततः काकः पञ्चजन्मस्वथैवं बक एव च ॥६६॥
पञ्चजन्मसु गृध्रश्च शृगालः सप्तजन्मसु। ततो दरिद्रः शूद्रश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः ॥६७॥

भरद्वाज उवाच

शूद्राणां शवदाही यः स कृतघ्न इति स्मृतः। [3]वयःप्रमाणां राजेन्द्र ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम्
तत्तुल्ययोनिभ्रमणात्तत्तुल्यनरकाच्छुचिः ॥६८॥
यो दोषो ब्राह्मणानां च शूद्राणां शवदाहने। तावदेव भवेद्दोषः शूद्रश्राद्धान्नभोजने ॥६९॥

से ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है और उनके ऊपर भार (बोझ) लादने से उसका दुगुना पाप होता है ॥५९॥ इस प्रकार सूर्य के (प्रचण्ड) धूप में जो भूखे-प्यासे बैलों को अपने (जोतने-लादने के) काम में लगाये रहता है उसे सौ ब्रह्म-हत्या के समान पाप होता है, इसमें संशय नहीं ॥६०॥ हे नृप! उन वृषवाही (बैलों द्वारा जोतने-लादने के काम करने वाले) ब्राह्मणों का अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है तथा उनके श्राद्ध-तर्पण को पितर लोग ग्रहण नहीं करते हैं। देवता भी उनका फूल, फल एवं जल ग्रहण नहीं करते हैं। जो ब्राह्मण स्वेच्छा से वृषवाहकों का अन्न भोजन करता है, उसे पितृकार्य एवं देवकार्य (पूजादि) में अधिकार भी नहीं रहता है। (इस कारण) चंद्रमा और सूर्य के समय तक उसे लाला (लार) कुण्ड नरक में रहते हुए विष्ठा भोजन और मूत्र पान निश्चित ही करना पड़ता है। यमराज के सेवक शूल द्वारा तीनों संध्याओं में उसे ताड़ना देते हैं, मुख में जलती हुई लकड़ी डाल देते और सूई से शरीर में निरन्तर छेदते रहते हैं। पश्चात् साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा, पाँच जन्मों तक कौवा और बगुला, पाँच जन्मों तक गीध और सात जन्मों तक सियार होता है। अनन्तर दरिद्र और महारोगी शूद्र होकर उसके पश्चात् शुद्ध होता है ॥६१-६७॥

भरद्वाज बोले—हे राजेन्द्र! जो शूद्रों का शव (मुर्दा) दाह करता है, वह कृतघ्न कहा गया है, उसे (अपनी) अवस्थानुसार निश्चित ब्रह्महत्या लगती है। अनन्तर उसी के समान योनियों में भ्रमण करते हुए उसी के समान नरक कुण्डों में जाता है और अन्त में शुद्ध होता है। शूद्रों के शव (मुर्दे) जलाने के कार्य करने से ब्राह्मणों को जो दोष प्राप्त होता है, शूद्रों के श्राद्धान्न भोजन करने में भी वही दोष उन्हें लगता है ॥६८-६९॥

---

१ क. ०लाभक्षे व०। २ क. ०वदिन्द्राश्चतुर्दश। ३ क. ०शवप्र०।

विभाण्डक उवाच

पितृश्राद्धे च शूद्राणां भुङ्क्ते यो ब्राह्मणोऽधमः । सुरापीती ब्रह्मघाती पितृदेवार्चनाद्बहिः ॥७०॥

मार्कण्डेय उवाच

यो दोषो ब्राह्मणानां च शूद्रस्त्रीगमने नृप । अहं वक्ष्यामि वेदोक्तं सावधानं निशामय ॥७१॥
कृतघ्नानां प्रधानश्च यो विप्रो वृषलीपतिः । कृमिदंष्ट्रे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥७२॥
कृमिभक्ष्यो भवेद्विप्रो विद्धश्च यमकिंकरैः । प्रतिमायां तप्तलौह्यामाश्लेषयति नित्यशः ॥७३॥
ततश्च पुंश्चलीयोनौ कृमिर्भवति निश्चितम् । एवं वर्षसहस्रं च ततः शूद्रस्ततः शुचिः ॥७४॥

सुयज्ञ उवाच

अन्येषां च कृतघ्नानां वद कर्मफलं मुने । श्लाघ्यो मे ब्रह्मशापश्च कस्य संपद्विनाऽऽपदम् ॥७५॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । आगतास्तु यतो मुक्ता मद्गेहे मुनयः सुराः ॥७६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० नृपमुनिसं० राधोपा० कर्मविपाको नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

विभाण्डक बोले—शूद्रों के यहाँ पितृश्राद्ध में जो अधम ब्राह्मण भोजन करता है, वह मद्यपायी और ब्रह्म-घाती के समान पितर एवं देवों की अर्चना कार्य से सदैव बाहर रहता है ॥७०॥

मार्कण्डेय बोले—हे नृप ! शूद्र की स्त्री के साथ रति करने पर जो वेदोक्त दोष ब्राह्मणों को प्राप्त होता है, वह मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। जो (ब्राह्मण) वृषली (शूद्र स्त्री) का पति होता है, वह कृतघ्नों में प्रधान माना जाता है और चौदहों इन्द्रों के समय तक कृमिदंष्ट्र (कीड़े काटने के) नरक में रहता है। वहाँ उसे कीड़े (काट-काट कर) खाते हैं, (ऊपर से) यमदूत ताड़ना देकर दुःखी करते हैं और (उस स्त्री की) जलती हुई लोह-मूर्ति का उसे नित्य आलिंगन करना पड़ता है। पश्चात् पुंश्चली स्त्री के भग में कीड़ा होकर वह निश्चित उत्पन्न होता है। इस भाँति सहस्र वर्ष बीतने पर शूद्र होता है और पश्चात् शुद्ध हो जाता है ॥७१-७४॥

सुयज्ञ बोले—हे मुने ! अन्य कृतघ्नों के कर्मफल बताने की कृपा करें ! हमें तो ब्रह्मशाप प्रशस्त मालूम हो रहा है। बिना आपत्ति के सम्पत्ति नहीं मिलती है। हम धन्य, कृतकृत्य हो गये, हमारा जीवन सफल हो गया; क्योंकि हमारे घर मुक्त मुनिवृन्द और देवगण पधारे हैं ॥७५-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत राधोपाख्यान में कर्मविपाक-कथन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीपार्वत्युवाच

अन्येषां च कृतघ्नानां यद्यत्कर्मफलं प्रभो। तेषां किमूचुर्मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥१॥

श्रीमहेश्वर उवाच

प्रश्नं कुर्वति राजेन्द्रे सर्वेषु मुनिषु प्रिये। तत्र प्रवक्तुमारेभे ऋषिर्नारायणो महान् ॥२॥

श्रीनारायण उवाच

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। स कृतघ्न इति ज्ञेयः फलं शृणु च भूमिप ॥३॥
यावन्तो रेणवः सिक्ता विप्राणां नेत्रबिंदुभिः। तावद्वर्षसहस्रं च शूलपोते स तिष्ठति ॥४॥
तप्ताङ्गारं च तद्भक्ष्यं पानं वै तप्तमूत्रकम्। तप्ताङ्गारे च शयनं ताडितो यमकिंकरैः ॥५॥
तदन्ते च महापापी विष्ठायां जायते कृमिः। षष्टिवर्षसहस्राणि देवमानेन भारते ॥६॥
ततो भवेद्भूमिहीनः प्रजाहीनश्च मानवः। दरिद्रः कृपणो रोगी शूद्रो निन्द्यस्ततः शुचिः ॥७॥

नारद उवाच

हन्ति यः परकीर्तिं च स्वकीर्तिं वा नराधमः। स कृतघ्न इति ख्यातस्तत्फलं च निशामय ॥८॥

अध्याय ५२

पार्वती बोलीं—हे प्रभो! अन्य कृतघ्नों के कर्मफल के विषय में वेद-वेदांग के पारगामी मुनियों ने क्या कहा? ॥१॥

महेश्वर बोले—हे प्रिये! समस्त मुनियों से राजेन्द्र (सुयज्ञ) के प्रश्न करने पर महान् ऋषि नारायण ने कहना आरम्भ किया ॥२॥

नारायण बोले—हे भूमिप! अपने द्वारा अथवा दूसरे द्वारा दी गयी ब्रह्म-वृत्ति (ब्राह्मण-जीविका) का जो अपहरण करता है, वह कृतघ्न कहा जाता है, उसका फल कह रहा हूँ, सुनो! (उस समय) ब्राह्मण के आँसुओं से जितनी भूमि की धूलि भीग जाती है, उतने रेणु के सहस्र वर्ष प्रमाण वह शूलपोत नामक नरक में रहता है। वहाँ तप्त अंगारों का भक्षण, संतप्त मूत्रजलों का पान और तप्त अंगारों पर शयन करते हुए वह (ऊपर से) यमदूतों द्वारा ताड़ित होता रहता है ॥३-५॥ पश्चात् वह महापापी भारत में देवों के वर्षमान के हिसाब से साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होकर उत्पन्न होता रहता है ॥६॥ अनन्तर भूमिरहित, संतानहीन, दरिद्र, कृपण (कंजूस), रोगी और निन्दित शूद्र होकर शुद्ध होता है ॥७॥

नारद बोले—जो अधम मनुष्य अपनी कीर्ति या दूसरे की कीर्ति को नष्ट करता है, वह कृतघ्न कहा गया है, उसका फल कह रहा हूँ, सुनो ॥८॥ हे नृप! चौदहों इन्द्रों के समय तक वह अन्धकूप नामक नरक में

अन्धकूपे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । कीटैर्नकुलगृध्रैश्च भक्षितः सततं नृप ॥९॥
तप्तक्षारोदकं पापी नित्यं पिबति वै ततः । सप्तजन्मस्वतः सर्पः काकः पञ्चस्वतः शुचिः ॥१०॥

देवल उवाच

ब्रह्मस्वं वा गुरुस्वं वा देवस्वं वाऽपि यो हरेत् । स कृतघ्न इति ज्ञेयो महापापी च भारते ॥११॥
अवटोदे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततो भवेत्सुरापी स ततः शूद्रस्ततः शुचिः ॥१२॥

जैगीषव्य उवाच

पितृमातृगुरूंश्चापि भक्तिहीनो न पालयेत् । वाचाऽपि ताडयेत्तांश्च स कृतघ्न इति स्मृतः ॥१३॥
वाचा च ताडयेन्नित्यं स्वामिनं कुलटा च या । सा कृतघ्नीति विख्याता भारते पापिनी वरा ॥१४॥
वह्निकुण्डं महाघोरं तौ प्रयातः सुनिश्चितम् । तत्र वह्नौ वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ
ततो भवेज्जलौकाश्च सप्तजन्मस्वतः शुचिः ॥१५॥

वाल्मीकिरुवाच

यथा तरुषु वृक्षत्वं सर्वत्र न जहाति च । तथा कृतघ्नता राजन्सर्वपापेषु वर्तते ॥१६॥
मिथ्यासाक्ष्यं यो ददाति कामात्क्रोधात्तथा भयात् । सभायां पाक्षिकं वक्ति स कृतघ्न इति स्मृतः ॥१७॥
पुण्यमात्रं चापि राजन्यो हन्ति स कृतघ्नकः । सर्वत्रापि च सर्वेषां पुण्यहानौ कृतघ्नता ॥१८॥

रहता है और उसे कीड़े, नेवला और गीध निरन्तर खाया करते हैं॥८-९॥ वह पापी नित्य तप्त खारा जल पीता है। पश्चात् सात जन्मों तक सर्प और पाँच जन्मों तक कौवा होकर अनन्तर शुद्ध हो जाता है॥१०॥

देवल बोले—जो ब्राह्मण-धन, गुरु-धन, या देव-धन का अपहरण करता है, भारत में वह महापापी कृतघ्न कहा जाता है॥११॥ चौदहों इन्द्रों के समय तक वह अवटोद (खाईं वाले) नरक में रहता है। पश्चात् मद्य पीने वाला और शूद्र होकर अन्त में शुद्ध हो जाता है॥१२॥

जैगीषव्य बोले—जो भक्तिरहित होकर माता, पिता और गुरु का पालन नहीं करता है और कड़ुवी बातों से उन्हें दुःखी करता है, वह 'कृतघ्न' कहा गया है। उसी भाँति जो कुलटा (व्यभिचारिणी) स्त्री अपने पति को कड़वी बातों से दुःखी करती है, भारत में वह पापिनी प्रधान एवं विख्यात 'कृतघ्नी' कही जाती है। वे दोनों महाघोर अग्निकुण्ड नरक में निश्चित जाते हैं। वहाँ चन्द्रमा-सूर्य के समय तक रह कर पश्चात् सात जन्मों तक जलौका (जोंक) होकर अन्त में शुद्ध होते हैं॥१३-१५॥

वाल्मीकि बोले—हे राजन्! वृक्षों में सर्वत्र वर्तमान वृक्षत्व धर्म की भाँति कृतघ्नता भी सभी पापों में वर्तमान रहती है॥१६॥ जो काम, क्रोध अथवा भयवश झूठी गवाही या सभा में किसी का पक्ष लेकर कहता है वह कृतघ्न कहा जाता है॥१७॥ हे राजन्! जो पुण्य मात्र का हनन करता है, वह कृतघ्न है। क्योंकि सभी जगह पुण्यों का नाश होने पर सभी को कृतघ्न होना पड़ता है॥१८॥ हे नृप! भारत में जो झूठी गवाही या किसी का पक्ष

मिथ्यासाक्ष्यं पाक्षिकं वा भारते वक्ति यो नृप । यावदिन्द्रसहस्रं च सर्पकुण्डे वसेद्ध्रुवम् ॥१९॥
संततं वेष्टितः सर्पैर्भीतो वै भक्षितस्तथा । भुङ्क्ते च सर्पविण्मूत्रं यमदूतेन ताडितः ॥२०॥
कृकलासो भवेत्तत्र भारते सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु मण्डूकः पितृभिः सप्तभिः सह ॥२१॥
ततो भवेद्वृक्षश्च महारण्ये तु शाल्मलिः । ततो भवेन्नरो मूकस्ततः शूद्रस्ततः शुचिः ॥२२॥

आस्तीक उवाच

गुर्वङ्गनानां गमने मातृगामी भवेन्नरः । नराणां मातृगमने प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥२३॥
भारते च नृपश्रेष्ठ यो दोषो मातृगामिनाम् । ब्राह्मणीगमने चैव शूद्राणां तावदेव हि ॥२४॥
ब्राह्मण्यास्तावदेव स्याद्दोषः शूद्रेण मैथुने । कन्यानां पुत्रपत्नीनां स्वश्रूणां गमने तथा ॥२५॥
सगर्भभ्रातृपत्नीनां भगिनीनां तथैव च । दोषं वक्ष्यामि राजेन्द्र यदाह कमलोद्भवः ॥२६॥
यः करोति महापापी चैताभिः सह मैथुनम् । जीवन्मृतो भवेत्सोऽपि चण्डालोऽस्पृश्य एव च ॥२७॥
नाधिकारो भवेत्तस्य सूर्यमण्डलदर्शने । शालग्रामं तज्जलं च तुलस्याश्च दलं जलम् ॥२८॥
सर्वतीर्थजलं चैव विप्रपादोदकं तथा । स्प्रष्टुं च नैव शक्नोति विट्तुल्यः पातकी नरः ॥२९॥
देवं गुरुं ब्राह्मणं च नमस्कर्तुं न चार्हति । विष्ठाधिकं तदन्नं च जलं मूत्राधिकं तथा ॥३०॥

लेकर कहता है, वह सहस्र इन्द्रों के समय तक सर्प-कुण्ड में निश्चित रहता है ॥१९॥ उसकी देह में साँप निरन्त लिपटे रहते हैं और भयभीत होने पर उसे वे खा लेते हैं। इस प्रकार वह वहाँ रह कर सर्पों का विष्ठा और मूत्र खाता-पीता है तथा यमदूतों द्वारा ताड़ित होता है ॥२०॥ पश्चात् भारत में सात पुस्त समेत सात जन्मों तक गिरगिट और सात जन्मों तक मेढक होकर वह घोर महाजंगल में सेमर का वृक्ष होता है। अनन्तर गूंगा शूद्र होकर अन्त में शुद्ध हो जाता है ॥२१-२२॥

आस्तीक बोले—गुरुपत्नियों के साथ गमन (रति) करने पर मनुष्य मातृगामी (माता के साथ व्यभिचार) का दोषभागी होता है और माता के साथ गमन करने पर मनुष्यों को (उद्धार होने के लिए) कोई प्रायश्चित्त ही नहीं कहा गया है ॥२३॥ हे नृपश्रेष्ठ! भारत में जो दोष मातृगमन में होता है, वही दोष शूद्रों को ब्राह्मणीगमन से होता है ॥२४॥ हे राजेन्द्र! शूद्र के साथ मैथुन करने पर ब्राह्मणी को भी उतना ही दोष होता है तथा कन्या, पुत्र-वधू (पतोहू), सास, भाइयों की गर्भिणी स्त्रियों और भगिनियों (बहनों) के साथ भोग करने पर होने वाले दोष को मैं बता रहा हूँ, जिसे ब्रह्मा ने बताया है ॥२५-२६॥ जो महापापी इन स्त्रियों के साथ मैथुन करता है, वह जीवित रहते हुए मृतक और चाण्डाल की भाँति अस्पृश्य (न छूने योग्य) है ॥२७॥ उसे सूर्य-मण्डल के दर्शन का अधिकार नहीं रहता है। तथा शालग्राम एवं उसके जल, तुलसीदल और उसके जल, समस्त तीर्थों के जल एवं ब्राह्मणों के चरणोदक का स्पर्श वह नहीं कर सकता है, क्योंकि वह पातकी विष्ठा के समान होता है ॥२८-२९॥ और देव, गुरु तथा ब्राह्मण को नमस्कार करने योग्य भी नहीं रहता है। अतः भारत में देवता, पितर तथा ब्राह्मणगण विष्ठा से अधिक उसके अन्न और मूत्र से अधिक उसके जल को अशुद्ध मान कर

देवताः पितरो विप्रा नैव गृह्णन्ति भारते। भवेत्तदङ्गवातेन तीर्थमङ्गारवाहनम् ॥३१॥
सप्तरात्रं ह्युपवसेद्दैवस्पर्शात्तथा द्विजः। भाराक्रान्ता च पृथिवी तद्भारं वोढुमक्षमा ॥३२॥
तत्पापात्पतितो देशः कन्याविक्रयिणो यथा। तत्स्पर्शाच्च तदालापाच्छयनाश्रयभोजनात् ॥३३॥
नृणां च तत्समं पापं भवत्येव न संशयः। कुम्भीपाके वत्सेत्सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥३४॥
दिवानिशं भ्रमेत्तत्र चक्रावर्ते निरन्तरम्। दग्धो वाऽग्निशिखाभिश्च यमदूतैश्च ताडितः ॥३५॥
एवं नित्यं महापापी भुङ्क्ते निरययातनाम्। विष्ठाहारश्च[1] सर्वत्र कुम्भीपाकेऽथ पातितः ॥३६॥
गते प्राकृतिके घोरे महति प्रलये तथा। पुनः सृष्टेः समारम्भे तद्विधो वा भवेत्पुनः ॥३७॥
(षष्टिवर्षसहस्राणि कृमिश्च पुंश्चलीभगे। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्) ॥३८॥
ततो भवति चण्डालो भार्याहीनो नपुंसकः। (सप्तजन्म गलत्कुष्ठी चाण्डालोऽस्पृश्य एव च ॥३९॥
ततस्तीर्थे भवेद्वृक्षः क्षुधितः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु सर्पश्च भार्याहीनो नपुंसकः) ॥४०॥
सप्तजन्मसु शूद्रश्च गलत्कुष्ठी नपुंसकः। ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यन्धः कुष्ठी नपुंसकः ॥४१॥
लब्ध्वैवं सप्त जन्मानि महापापी भवेच्छुचिः ॥४२॥

उसका ग्रहण नहीं करते हैं। उसके अंग-स्पृष्ट वायु के स्पर्श होने से तीर्थ मानों अंगार बहने लगता है ॥३०-३१॥ दैववश उसका स्पर्श हो जाने पर ब्राह्मण को सात रात उपवास करना चाहिए, उसके भार से पृथ्वी दबी रहती है और उसका भार ढोने में अपनी असमर्थता प्रकट करती है ॥३२॥ कन्या-विक्रेता की भाँति उसके पातक से देश पतित हो जाता है और उसके स्पर्श, उसके साथ बातचीत, शयन, बैठने और भोजन करने से मनुष्यों को उसके समान ही पाप लगता है, इसमें संशय नहीं। पश्चात् सौ ब्रह्मा के समय तक कुम्भीपाक नरक में वह रहता है ॥३३-३४॥ चक्के की भाँति गोलाकार उसकी लहरों में रातदिन उसे भ्रमण करना पड़ता है, अग्नि की ज्वालाओं से जलता रहता है और यमदूत ऊपर से ताड़ना देते हैं ॥३५॥ इस प्रकार वह महापापी नित्य नरक-यातनाओं को भोगता है। कुम्भीपाक में गिरने पर सर्वत्र विष्ठा का ही आहार करना पड़ता है ॥३६॥ प्राकृतिक घोर महाप्रलय के व्यतीत होने और सृष्टि के पुनः आरम्भ होने पर वह पूर्व की भाँति ही रहता है ॥३७॥ उसे साठ हजार वर्ष तक पुंश्चली के भग का क्रीड़ा और उतने ही समय तक विष्ठा का कीड़ा होना पड़ता है। तदनन्तर वह चाण्डाल, पत्नीरहित तथा नपुंसक होता है, फिर सात जन्म गलत्कुष्ठी और अस्पृश्य चाण्डाल होता है, अनन्तर किसी तीर्थ में वृक्ष, सात जन्म भुक्खड़, सात जन्म साँप, पत्नीहीन और नपुंसक होता है। पुनः सात जन्मों तक शूद्र, गलत्कुष्ठ का रोगी और नपुंसक होकर अंधा, कुष्ठी एवं नपुंसक ब्राह्मण होता है। इस प्रकार सात जन्मों तक वह महापापी यातना भोगने के अनन्तर शुद्ध होता है ॥३८-४२॥

---

१. क. आहारश्चास्ति सर्वत्र कुम्भीपाके विवर्जिते।

मुनय ऊचुः

इत्येवं कथितं सर्वमस्माभिर्वो यथागमम् । एभिस्तुल्यो भवेद्दोषोऽप्यतिथीनां पराभवे ॥४३॥
प्रणामं कुरु विप्रेन्द्रं गृहं प्रापय निश्चितम् । संपूज्य ब्राह्मणं यत्नाद्गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् ॥४४॥
वनं गच्छ महाराज तपस्यां कुरु सत्वरम् । ब्रह्मशापैर्विनिर्मुक्तः पुनरेवाऽऽगमिष्यसि ॥४५॥
इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे ययुस्तूर्णं स्वमन्दिरम् । सुराश्चापि च राजानो बन्धुवर्गाश्च पार्वति ॥४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपा०
कर्मविपाको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

गतेषु मुनिसंघेषु श्रुत्वा कर्मफलं नृणाम् । किं चकार नृपश्रेष्ठो ब्रह्मशापेन विह्वलः ॥१॥
अतिथिर्ब्राह्मणो वाऽपि किं चकार तदा प्रभो । जगाम नृपगेहं वा न वा तद्वक्तुमर्हसि ॥२॥

महेश्वर उवाच

गतेषु मुनिसंघेषु चिन्ताग्रस्तो नराधिपः । प्रेरितश्च वसिष्ठेन धर्मिष्ठेन पुरोधसा ॥३॥
पपात दण्डवद्भूमौ पादयोर्ब्राह्मणस्य च । त्यक्त्वा मन्युं द्विजश्रेष्ठो ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥४॥
सस्मितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा त्यक्तमन्युं कृपामयम् । उवाच नृपतिश्रेष्ठः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः ॥५॥

मुनिवर बोले—इस भाँति हम लोगों ने शास्त्रानुसार सब सुना दिया। इनके समान ही दोष अभ्यागत के अपमान करने पर होता है। अतः इस ब्राह्मणराज को प्रणाम करो और अपने गृह ले चलकर सप्रयत्न ब्राह्मण की पूजा करके आशिष ग्रहण करो। हे महाराज! अनन्तर वन जाकर तपस्या करो, जिससे इस ब्रह्म-शाप से मुक्त होकर पुनः यहाँ आगमन कर सको। हे पार्वती! इतना कहकर वे मनि लोग शीघ्र अपने-अपने घर चले गये। पीछे देवगण, राजा लोग और बन्धुवर्ग भी चले गये ॥४३-४६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हर-गौरी-संवाद-विषयक राधोपाख्यान में सुयज्ञोपाख्यान-कर्मविपाक-कथन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

अध्याय ५३

अतिथि का उपदेश

पार्वती बोलीं—मुनियों के चले जाने पर ब्राह्मण-शाप से आकुल, श्रेष्ठ राजा ने मनुष्यों का कर्मफल सुनकर क्या किया? हे प्रभो! तब उस अभ्यागत ब्राह्मण ने क्या किया? राजा के यहाँ वह गया या नहीं? यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१-२॥

महेश्वर बोले—मुनि-समूहों के चले जाने पर चिन्दाग्रस्त राजा धार्मिक एवं पुरोहित वसिष्ठ जी द्वारा प्रेरित होकर ब्राह्मण के चरणों में दण्डे की भांति भूमि पर गिर पड़ा। अनन्तर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने भी क्रोध त्याग कर उसे शुभाशिष प्रदान किया ॥३-४॥ मन्द मुसुकान करते हुए ब्राह्मण को क्रोधरहित और कृपालु देख कर नृपश्रेष्ठ ने हाथ जोड़कर एवं आँखों में आँसू भरे, उससे कहना आरम्भ किया ॥५॥

राजोवाच

कुत्र वंशे भवाञ्जातः किं नाम भवतः प्रभो। किं नाम वा पितुर्ब्रूहि क्व वासः कथमागतः ॥६॥
विप्ररूपी स्वयं विष्णुर्गूढः कपटमानुषः। साक्षात्स मूर्तिमानग्निः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥७॥
को वा गुरुस्ते भगवन्निष्टदेवश्च भारते। तव वेषः कथमयं ज्ञानपूर्णस्य सांप्रतम् ॥८॥
गृहाण राज्यं निखिलमैश्वर्यं कोशमेव च। स्वभृत्यं कुरु मे पुत्रं मां च दासीं स्त्रियं मुने ॥९॥
सप्तसागरसंयुक्तां सप्तद्वीपां वसुंधराम्। [1]अष्टादशोपद्वीपाढ्यां सशैलवनशोभिताम् ॥१०॥
मया भृत्येन शाधि त्वं राजेन्द्रो भव भारते। रत्नेन्द्रसारखचिते तिष्ठ सिंहासने वरे ॥११॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। उवाच परमं तत्त्वमज्ञातं सर्वदुर्लभम् ॥१२॥

अतिथिरुवाच

मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तत्पुत्रः कश्यपः स्वयम्। कश्यपस्य सुताः सर्वे प्राप्ता देवत्वमीप्सितम् ॥१३॥
तेषु त्वष्टा महाज्ञानी चकार परमं तपः। दिव्यं वर्षसहस्रं च पुष्करे दुष्करं तपः ॥१४॥
सिषेवे ब्राह्मणार्थं च देवदेवं हरिं परम्। नारायणाद्वरं प्राप विप्रं तेजस्विनं सुतम् ॥१५॥
ततो बभूव तेजस्वी विश्वरूपस्तपोधनः। पुरोधसं चकारेन्द्रो वाक्पतौ तं क्रुधा गते ॥१६॥

राजा बोले—हे प्रभो! आप किस वंश में उत्पन्न हुए हैं और आपका नाम क्या है, कहाँ निवास-स्थान है एवं यहाँ कैसे आगमन हुआ है? ब्राह्मण रूप में छिपे साक्षात् विष्णु ही आप हैं, जो छल से मनुष्य तथा ब्रह्म तेज से प्रज्वलित होने के नाते साक्षात् मूर्तिमान् अग्नि मालूम हो रहे हैं ॥६-७॥ हे भगवन्! इस भारत में आप के गुरु और इष्टदेव कौन हैं? आप ज्ञानपूर्ण हैं किन्तु आधुनिक वेष आपका ऐसा क्यों है? हे मुने! समस्त ऐश्वर्य और कोश समेत यह राज्य ग्रहण कीजिये। पुत्र समेत मुझे अपना सेवक बनाइये और स्त्री को दासी कीजिये ॥८-९॥ सातों सागर, सातों द्वीप, अट्ठारहों उपद्वीप एवं पर्वत-वन से विभूषित इस पृथिवी का मुझ भृत्य द्वारा शासन कीजिये और आप भारत में राजेन्द्र (महाराज) बन कर उत्तमरत्नों के सार भाग से खचित परम श्रेष्ठ सिंहासन पर सुप्रतिष्ठित रहें ॥१०-११॥ राजा की ऐसी बातें सुनकर वे मुनि-श्रेष्ठ हँस पड़े। अनन्तर परमतत्त्व की बातें कहना आरम्भ किया, जो सभी से अज्ञात एवं सबको दुर्लभ थी ॥१२॥

अतिथि बोले—ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप और कश्यप के सभी पुत्रों ने अभीप्सित देवत्व प्राप्त कर लिया है ॥१३॥ उन्हीं में से महाज्ञानी त्वष्टा ने पुष्कर क्षेत्र में सहस्र दिव्य वर्ष तक दुष्कर (कठिन) तप किया। उन्होंने ब्राह्मणार्थ देवाधिदेव भगवान् की अति सेवा की, जिससे नारायण द्वारा 'तेजस्वी पुत्र होने' का उन्हें वरदान प्राप्त हुआ ॥१४-१५॥ अनन्तर उनके तेजस्वी एवं महातपस्वी विश्वरूप नामक पुत्र हुआ, जिसे इन्द्र ने क्रुद्ध होकर बृहस्पति के चले जाने पर अपना पुरोहित बनाया ॥१६॥ जिस समय मातामह दैत्यों के

---

१. क. नवद्वीपोपद्वीपां तां स०

मातामहेभ्यो दैत्येभ्यो दत्तवन्तं घृताहुतिम् । चिच्छेद तं शुनासीरो ब्राह्मणं मातुराज्ञया ॥१७॥
विश्वरूपस्य तनयो विरूपो मत्पिता नृप । अहं च सुतपा नाम विरागी काश्यपो द्विजः ॥१८॥
महादेवो मम गुरुर्विद्याज्ञानमनुप्रदः । अभीष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥१९॥
तच्चिन्तयामि पादाब्जं न मे वाञ्छाऽस्ति संपदि । सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यं राधिकापतेः ॥२०॥
तेन दत्तं न गृह्णामि विना तत्सेवनं शुभम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा मन्येऽहं जलबिन्दुवत् ॥२१॥
भक्तिव्यवहितं मिथ्याभ्राममेव तु नश्वरम् । इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सौरत्वं वा नराधिप ॥२२॥
न मन्ये जलरेखेति नृपत्वं केन गण्यते ।
श्रुत्वा सुयज्ञ यज्ञे ते मुनीनां गमनं नृप । लालसां विष्णुभक्तिं ते संप्रापयितुमागतः ॥२३॥
केवलानुगृहीतस्त्वं नहि शप्तो मयाऽधुना । समुद्धृतश्च पतितो घोरे निम्ने भवार्णवे ॥२४॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् ॥२५॥
राजन्निर्गम्यतां गेहाद्देहि राज्यं सुताय च । पुत्रे न्यस्य प्रियां साध्वीं गच्छ वत्स वनं द्रुतम् ॥२६॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव भूमिप । श्रीकृष्णं भज राधेशं परमात्मानमीश्वरम् ॥२७॥
ध्यानसाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । आविर्भूतैस्तिरोभूतैः प्राकृतैः प्रकृतेः परम् ॥२८॥

लिए (उस यज्ञ में) घृत की आहुति उस ब्राह्मण ने दी उसी समय इन्द्र ने उस ब्राह्मण को माता की आज्ञा से मार डाला ॥१७॥ हे नृप! उन्हीं विश्वरूप के पुत्र मेरे पिता थे। मेरा नाम सुतपा है, मैं विरागी एवं कश्यप गोत्र का ब्राह्मण हूँ॥१८॥ विद्या एवं ज्ञान के प्रदाता महादेवजी हमारे गरु हैं और सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण, जो प्रकृति से परे हैं, हमारे इष्टदेव हैं। मैं उन्हीं के चरणकमल का सतत चिन्तन करता हूँ, अतः मुझे सम्पत्ति की इच्छा नहीं है। राधिका जी के पति भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य और सामीप्य नामक मोक्ष को भी बिना उनकी शुभ सेवा किये नहीं चाहता हूँ, ब्रह्मत्व और अमरत्व (ब्रह्मा और देव होने) को मैं जल के बुलबुले के समान मानता हूँ। हे राजन्! ये सब भक्ति में व्यवधानकारक, मिथ्या, भ्रमात्मक और नाशवान् हैं। मैं इन्द्रत्व, मनुत्व, सौरत्व (सूर्य होने) को जब जल रेखा की भाँति (क्षणिक नश्वर) मानता हूँ, तो नृपत्व (राजा होने) की क्या गणना है! हे नृप! सुयज्ञ! तुम्हारे यज्ञ में मुनियों का गमन सुनकर मैं भगवान् विष्णु की भक्ति तुम्हें प्राप्त कराने की लालसा (इच्छा) से आया हूँ। संप्रति मैंने तुम्हें शाप नहीं दिया है, प्रत्युत तुम उसी द्वारा अनुगृहीत हुए हो। अधःपतन करने वाले इस घोर संसार-सागर में तुम पतित हो गये थे, मैंने तुम्हारा उद्धार कर दिया है॥१९-२४॥ क्योंकि न तीर्थ जलमय होते हैं और न देवता लोग मिट्टी और पत्थरमय होते हैं। वे पवित्र करते हैं लम्बे समय में और भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त दर्शनमात्र से पवित्र कर देते हैं॥२५॥ अतः हे राजन्! राज्य पुत्र को सौंप कर घर से (तप करने के हेतु) चले जावो। हे वत्स! हे भूमिप! साध्वी स्त्री और राज्य पुत्र को सौंपकर तप के लिए शीघ्र जंगल जाओ, क्योंकि तृण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी कुछ मिथ्या ही है। अतः राधा जी के प्राणेश भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करो, जो परमात्मा, ईश्वर एवं ध्यान करने से साध्य हैं, अन्यथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि और प्रकट एवं अन्तर्हित होने वाले प्राकृत जनों के लिए वे दुराराध्य हैं एवं प्रकृति से परे हैं॥२६-२८॥

ब्रह्मा स्रष्टा हरिः पाता हरः संहारकारकः । दिक्पालाश्च दिगीशाश्च भ्रमन्त्येवास्य मायया ॥२९॥
यदाज्ञया वाति वायुः सूर्यो दिनपतिः सदा । निशापतिः शशी शश्वत्सस्यमुत्स्निग्धताकरः ॥३०॥
कालेन मृत्युः सर्वेषां सर्वविश्वेषु वै भवेत् । काले वर्षति शक्रश्च दहत्यग्निश्च कालतः ॥३१॥
भीतवद्विश्वशास्ता च प्रजासंयमनो यमः । कालः संहरते काले काले सृजति पाति च ॥३२॥
स्वदेशे वै समुद्रश्च स्वदेशे वै वसुंधरा । स्वदेशे पर्वताश्चैव स्वाः पातालाः स्वदेशतः ॥३३॥
स्वर्लोकाः सप्त राजेन्द्र सप्तद्वीपा वसुंधरा । शैलसागरसंयुक्ताः पातालाः सप्त चैव हि ॥३४॥
ब्रह्माण्डमेभिर्लोकैश्च [1]डिम्बाकारं जलप्लुतम् । सन्त्येव प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३५॥
सुरा नराश्च नागाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । आपातालाद्ब्रह्मलोकपर्यन्तं डिम्बरूपकम् ॥३६॥
इदमेव तु विध्यण्डमुत्तमं कृत्रिमं नृप । नाभिपद्मे विराड्विष्णोः क्षुद्रस्य जलशालिनः ॥३७॥
स्थितं यथा पद्मबीजं कर्णिकायां च पङ्कजे । एवं सोऽपि शयानः स्याज्जलतल्पे सुविप्लुते ॥३८॥
ध्यायत्येव महायोगी प्राकृतः प्रकृतेः परम् । कालभीतश्च कालेशं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥३९॥
महाविष्णोर्लोमकूपे साधारः सोऽस्ति विस्तृते । कूपेषु लोम्नां प्रत्येकमेवं विश्वानि सन्ति वै ॥४०॥

उन्हीं के द्वारा ब्रह्मा सृष्टि करने वाले, विष्णु रक्षक और शिव संहार करने वाले हुए हैं। उन्हीं की माया द्वारा दिक्पाल-गण एवं दिशाओं के अधीश्वर चारों ओर भ्रमण किया करते हैं ॥२९॥ उन्हीं की आज्ञा से वायु बहता है, सूर्य सदा दिन के स्वामी बने रहते हैं, चन्द्रमा रात्रि के पति हैं, जो निरन्तर सस्य (फसल) को अति स्निग्ध करते हैं। सम्पूर्ण विश्वों में काल द्वारा ही सब की मृत्यु होती है। काल में ही इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि काल द्वारा ही जलाते हैं। प्रजाओं पर संयम (शासन) करने वाले यमराज काल द्वारा ही भयभीत के समान होकर विश्व के ऊपर शासन करते हैं। काल में ही प्रजाओं का संहार होता है, काल में ही सृष्टि और रक्षा होती है ॥३०-३२॥ अपने ही देश में सातों समुद्र, अपने ही देश में समस्त पृथ्वी, अपने ही देश में समस्त पर्वत और स्वदेश में ही समस्त पाताल आदि लोक हैं। हे राजेन्द्र! सात स्वर्गलोक, सातों द्वीपों समेत पृथ्वी और पर्वत, सागर समेत सात पाताल लोक के साथ समस्त ब्रह्माण्ड जल के मध्य डिम्बाकार बना रहता है। इस भाँति प्रति ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देव रहते हैं ॥३३-३५ देवगण, मनुष्य, नागगण, गन्धर्व लोग और राक्षस आदि पाताल से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त डिम्ब का रूप है ॥३६॥ हे नृप! यह परमोत्तम (प्राकृत) ब्रह्माण्ड कृत्रिम (नश्वर) है। जलशायी क्षुद्र विष्णु के नाभि-कमल पर विराड् रूप ब्रह्मा इस भाँति स्थित रहते हैं जैसे कमल-पुष्प की कर्णिका में कमल बीज। अति विस्तृत जल की शय्या पर शयन किये वे विष्णु महायोगी, जो प्रकृति-जन्य हैं, प्रकृति से परे रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करते हैं ॥३९॥ उन काल के ईश भगवान् श्रीकृष्ण से, जो ईश्वर एवं सब के आत्मा हैं, काल की भाँति भयभीत रहते हैं। वे महाविष्णु के विस्तृत लोमकूप में साधार रहते हैं। उनके प्रत्येक लोमकूप में विश्व अवस्थित हैं ॥३७-४०॥ हे भूपति! महाविष्णु के शरीर-लोम और ब्रह्माण्ड की संख्या

---

१ क. बिम्बा० ।

महाविष्णोर्गात्रलोम्नां ब्रह्माण्डानां च भूमिप । संख्यां कर्तुं न शक्नोति कृष्णोऽप्यन्यस्य काकथा ॥४१॥
महाविष्णुः प्राकृतिकः सोऽपि डिम्बोद्भवः सदा । भवेत्कृष्णेच्छया डिम्बः प्रकृतेर्गर्भसंभवः ॥४२॥
सर्वाधारो महाविष्णुः कालभीतः स शङ्कितः । कालेशं ध्यायति स्वैरं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥४३॥
एवं च सर्वविश्वस्था ब्रह्मविष्णुशिवादयः । महान्विराट् क्षुद्रविराट् सर्वे प्राकृतिकाः सदा ॥४४॥
सा सर्वबीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । काले लीना च कालेशे कृष्णे तं ध्यायति स्म सा ॥४५॥
एवं सर्वे कालभीताः प्रकृतिः प्राकृतास्तथा । आविर्भूतास्तिरोभूताः कालेन परमात्मनि ॥४६॥
इत्येवं कथितं सर्वं महाज्ञानं सुदुर्लभम् । शिवेन गुरुणा दत्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपा० सुयज्ञं प्रत्यतिथ्युपदेशो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजोवाच

कुत्राऽऽधारो महाविष्णोः सर्वाधारस्य तस्य च । कालभीतस्य कतिचित्कालमायुर्मुनीश्वर ॥१॥

स्वयं कृष्ण भी नहीं कर सकते हैं अन्य की तो बात ही क्या है ॥४१॥ वे महाविष्णु भी प्रकृति द्वारा उस डिम्ब से सदैव उत्पन्न होते हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा होती है, प्रकृति के गर्भ से डिम्ब उत्पन्न हो जाता है॥४२॥ इस भाँति समस्त के आधार महाविष्णु भी काल से भयभीत एवं शंकित रह कर कालाधीश्वर एवं परम स्वतंत्र ईश्वर एवं सर्वात्मा श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करते हैं॥४३॥ इस प्रकार सभी विश्वों में रहने वाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि तथा महाविराट् एवं क्षुद्र विराट् सभी प्राकृत (प्रकृतिजन्य) हैं। वही ईश्वरी मल प्रकृति समस्त बीजों का स्वरूप है, जो समय आने पर कालाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाती है और नित्य उनका ध्यान करती रहती है॥४४-४५॥ अतः सभी लोग काल से भयभीत रहते हैं और प्रकृति से उत्पन्न होने के नाते प्राकृत हैं तथा समय-समय पर उसी परमात्मा में आविर्भूत और विलीन हुआ करते हैं॥४६॥ इस प्रकार मैंने अति दुर्लभ महाज्ञान तुम्हें सुना दिया, जिसे गुरु शिव ने मुझे बताया था। अब और क्या सुनना चाहते हो॥४७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी-संवाद के राधोपाख्यान में सुयज्ञ के प्रति अतिथि-उपदेश-कथन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

अध्याय ५४

सुयज्ञ की गोलोकप्राप्ति का वर्णन

राजा बोले—हे मुनीश्वर! समस्त के आधार महाविष्णु का आधार कौन है और

क्षुद्रस्य कतिचित्कालं ब्रह्मणः प्रकृतेस्तथा । मनोरिन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्याऽऽयुस्तथैव च ॥२॥
अन्येषां वै जनानां च प्राकृतानां परं वयः । वेदोक्तं सुविचार्यं च वद वेदविदां वर ॥३॥
विश्वानामूर्ध्वभागे च कः स्याद्वा लोक एव सः । कथयस्व महाभाग संदेहच्छेदनं कुरु ॥४॥

मुनिरुवाच

गोलोको नृप विश्वानां विस्तृतश्च नभः समः । तथा नित्यं डिम्बरूपः श्रीकृष्णेच्छासमुद्भवः ॥५॥
जलेन परिपूर्णश्च कृष्णस्य मुखबिन्दुना । सृष्टयुन्मुखस्याऽऽदिसर्गे परिश्रान्तस्य खेलतः ॥६॥
प्रकृत्या सह युक्तस्य कलया निजया नृप । तत्राऽऽधारो महाविष्णोर्विश्वाधारस्य विस्तृतः ॥७॥
प्रकृतेर्गर्भसंभूतडिम्बोद्भूतस्य भूमिप । सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाविराट् ॥८॥
राधेश्वरस्य कृष्णस्य षोडशांशः प्रकीर्तितः । दूर्वादलश्यामरूपः सस्मितश्च चतुर्भुजः ॥९॥
वनमालाधरः श्रीमाञ्शोभितः पीतवाससा । ऊर्ध्वं नभसि तद्विष्णोर्नित्यवैकुण्ठ एव च ॥१०॥
आत्माकाशसमो नित्यो विस्तृतश्चन्द्रबिम्बवत् । ईश्वरेच्छासमुद्भूतो निर्लक्ष्यश्च निराश्रयः ॥११॥
आकाशवत्सुविस्तारो रत्नौघैश्च विनिर्मितः । तत्र नारायणः श्रीमान्वनमाली चतुर्भुजः ॥१२॥
लक्ष्मीसरस्वतीगङ्गातुलसीपतिरीश्वरः । सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥१३॥

उस कालभीत की आयु कितने काल की है? ॥१॥ क्षुद्र विराट् की आयु, ब्रह्मा, प्रकृति, मनु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य की आयु क्या है? ॥२॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! अन्य प्राकृत जनों की आयु भी वेदानुकूल भलीभांति विचार कर बताने की कृपा करें॥३॥ समस्त विश्वसंघ के ऊपर कौन लोक है? अथवा वही है क्या? हे महाभाग! यह सन्देह दूर करने की कृपा करें॥४॥

मुनि बोले—हे नृप! समस्त विश्व-समूहों के ऊपर गोलोक है जो आकाश की भाँति विस्तृत है तथा भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से उत्पन्न एवं नित्य डिम्ब (अण्ड) रूप में रहता है॥५॥ आदि सृष्टि के समय सृष्टि के प्रति उन्मुख होने पर खेल से श्रान्त भगवान् श्रीकृष्ण के मुख-बिन्दु रूप जल से यह परिपूर्ण है॥६॥ हे नृप! अपनी निजी कला रूप प्रकृति से युक्त एवं विश्व के आधार महाविष्णु का वहीं विस्तृत आधार है॥७॥ हे भूमिपाल! वह महाविष्णु प्रकृति के गर्भ से उत्पन्न डिम्ब से प्रकट हुआ है, उसका आधार महाविराट् अति विस्तृत जलाधार पर शयन करता रहता है॥८॥ राधेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का वह षोडशांश (सोलहवाँ अंश) कहा जाता है जो दूर्वादल की भाँति श्यामल एवं मन्द मुसुकान करते हुए चार भुजाओं से युक्त है ॥९॥ तथा वनमाला धारण किए वह श्री-सुशोभित एवं पीताम्बर-भूषित है। आकाश में ऊपर उस विष्णु का नित्य स्थायी वैकुण्ठ लोक है॥१०॥ जो आत्मा एवं आकाश की भाँति नित्य, चन्द्र-बिम्ब के समान विस्तृत, ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न, लक्ष्यहीन और निराधार है॥११॥ तथा आकाश की भाँति अति विस्तार में स्थित एवं रत्नसमूहों से सुरचित है। जिसमें श्रीमान् नारायण भगवान् वनमाला धारण किए चार भुजाओं से विराजमान रहते हैं॥१२॥ उन ईश्वर के लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी ये चार पत्नियाँ हैं। वे स्वयं सुनन्द नन्द और कुमुद आदि पार्षदों से सदा आवृत रहते हैं ॥१३॥ सर्वेश्वर, समस्त सिद्धों के अधीश्वर एवं

सर्वेशः सर्वसिद्धेशो भक्तानुग्रहविग्रहः । श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥१४॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् । ऊर्ध्वं वैकुण्ठलोकाच्च पञ्चाशत्कोटियोजनात् ॥१५॥
गोलोको वर्तुलाकारो वरिष्ठः सर्वलोकतः । अमूल्यरत्नखचितैर्मन्दिरैश्च विभूषितः ॥१६॥
रत्नेन्द्रसारखचितैः स्तम्भसोपानचित्रितैः । मणीन्द्रदर्पणासक्तैः कपाटैः कलशोज्ज्वलैः ॥१७॥
नानाचित्रविचित्रैश्च शिबिरैश्च विराजितः । कोटियोजनविस्तीर्णो दैर्घ्ये शतगुणस्तथा ॥१८॥
विरजासरिदाकीर्णैः शतशृङ्गैः सुवेष्टितः । सरिदर्धप्रमाणेन दैर्घ्येण च ततेन च ॥१९॥
शैलार्धपरिमाणेन युक्तो वृन्दावनेन च । तदर्धमानविलसद्रासमण्डलमण्डितः ॥२०॥
सरिच्छैलवनादीनां मध्ये गोलोक एव च । यथा पङ्कजमध्ये च कर्णिका सुमनोहरा ॥२१॥
तत्र गोगोपगोपीभिर्गोपीशो रासमण्डले । रासेश्वर्या राधिकया संयुक्तः संततं नृप ॥२२॥
द्विभुजो मुरलीहस्तः शिशुर्गोपालरूपधृत् । वह्निशुद्धांशुकाधानो रत्नभूषणभूषितः ॥२३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नमालाविराजितः । रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नच्छत्रेण शोभितः ॥२४॥
तथा स प्रियगोपालैः सेवितः श्वेतचामरैः । भूषिताभिश्च गोपीभिर्मालाचन्दनचर्चितः ॥२५॥
सस्मितः सकटाक्षाभिः सुवेषाभिश्च वीक्षितः । कथितो लोकविस्तारो यथाशक्ति यथागमम् ॥२६॥

भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण दो भुजाओं और चार भुजाओं से दो रूप धारण कर चार भुजाओं से वैकुण्ठ में और दो भुजाओं से स्वयं गोलोक में स्थित हैं, जो वैकुण्ठ लोक से पचास करोड़ योजन ऊपर स्थित है ॥१४-१५॥ यह गोलोक गोलाकार, सभी लोकों से श्रेष्ठ, अमूल्य रत्नों से खचित असंख्य मन्दिरों से विभूषित है ॥१६॥ वहाँ के खम्भे और सीढ़ियाँ उत्तम रत्नों के सारभाग से खचित होने के नाते चित्रविचित्र हैं। उत्तम मणियों के दर्पणों (शीशों) से युक्त किवाड़ों, उज्ज्वल कलशों और अनेक भाँति के चित्र-विचित्र शिविरों से वह गोलोक सुशोभित है। उसकी चौड़ाई एक करोड़ योजन है और लम्बाई सौ गुनी अधिक ॥१७-१८॥ विरजा नामक नदी से व्याप्त सौ शिखरों वाले पर्वतों से वह आवेष्टित है। उक्त नदी के आधे प्रमाण लम्बे-चौड़े तथा पर्वत के आधे प्रमाण ऊँचे वृन्दावन से वह युक्त है। उसके आधे प्रमाण में स्थित रास-मण्डल से मण्डित गोलोक नदी, पर्वत और जंगलों आदि के मध्य में इस प्रकार सुशोभित है जैसे कमल-पुष्प के मध्य अति मनोहर कर्णिका रहती है। हे नृप! उस रासमण्डल में गोपाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण रासेश्वरी राधिका को निरन्तर साथ लिए गौओं, गोपवृन्दों और गोपियों से आवृत रहते हैं। वे सदैव दो भुजाओं वाले रूप से मुरली हाथ में लिए बच्चे की अवस्था वाले गोपाल रूप को धारण किये रहते हैं। अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र धारण किये, रत्नों के भूषणों से भूषित, समस्त अंगों में चन्दन लगाये, रत्नों की माला से सुशोभित होकर रत्न-सिंहासन पर वे विराजमान हैं। ऊपर रत्नों का छत्र लगा है और प्रिय गोपाल गण श्वेत चँवरों से सेवा करते रहते हैं। उत्तम वेषभूषा धारण करने वाली गोपियाँ उन्हें माला-चन्दन लगाती हैं और अपने कटाक्षों से बार-बार देखती रहती हैं, जिससे भगवान् मन्द मुसुकान करते रहते हैं। इस प्रकार मैंने गोलोक का विस्तार वेदानुसार यथाशक्ति बता दिया है ॥१९-२६॥

यथाश्रुतं शंभुवक्त्रात्कालमानं निशामय । पात्रं षट्पलसंभूतं गंभीरं चतुरङ्गुलम् ॥२७॥
स्वर्णमाषकृतच्छिद्रं दण्डैश्च चतुरङ्गुलैः । यावज्जलप्लुतं पात्रं तत्कालं दण्डमेव च ॥२८॥
दण्डद्वयं मुहूर्तं च यामस्तस्य चतुष्टयम् । वासरश्चाष्टभिर्यामैः पक्षस्तैर्दशपञ्चभिः ॥२९॥
मासो द्वाभ्यां च पक्षाभ्यां वर्षं द्वादशमासकैः । मासेन वै नराणां च पितृणां तदहर्निशम् ॥३०॥
कृष्णपक्षे दिनं प्रोक्तं शुक्ले रात्रिः प्रकीर्तिता । वत्सरेण नराणां च देवानां च दिवानिशम् ॥३१॥
अयनं ह्युत्तरमहो रात्रिर्वै दक्षिणायनम् । युगकर्मानुरूपं च नरादीनां वयो नृप ॥३२॥
प्रकृतेः प्राकृतानां च ब्रह्मादीनां निशामय । कृतं त्रेता द्वापरं च कालश्चेति चतुर्युगम् ॥३३॥
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैः सावधानं निशामय । चत्वारि त्रीणि च द्वयेकं सहस्राणि कृतादिकम् ॥३४॥
तेषां च संध्यासंध्यांशौ द्वे सहस्रे प्रकीर्तिते । त्रिचत्वारिंशकैर्लक्षैः सविंशतिसहस्रकैः ॥३५॥
चतुर्युगं परिमितं नरमानक्रमेण च । लक्षैश्च सप्तदशभिः साष्टविंशसहस्रकैः ॥३६॥
कृतं युगं नृमानेन संख्याविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥३७॥
सहस्रैः षण्णवतिभिर्लक्षैर्द्वादशभिः सह । त्रेतायुगं परिमितं कालविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥३८॥
अष्टलक्षैः सह मितं चतुःषष्टिसहस्रकम् । परिमाणं द्वापरस्य संख्याविद्भिरितीरितम् ॥३९॥
सद्वात्रिंशत्सहस्रैश्च चतुर्लक्षैश्च वत्सरैः । नृमानाद्वै कलियुगं विदुः कालविदो बुधाः ॥४०॥

शंकर के मुख से मैंने समय के मान के सम्बन्ध में जैसा सुना था वह तुम भी सुन लो। छह पल सोने का बना हुआ एक पात्र हो, जिसकी गहराई चार अंगुल की हो। उसमें एक-एक माशे सोने के बने हुए चार-चार अंगुल लंबे चार कीलों से छेद कर दिये जायँ। फिर उस पात्र को जल के ऊपर रख दिया जाय। उन छिद्रों से जल आकर जितनी देर में वह पात्र भर दे उतने समय को एक दण्ड कहा जाता है ॥२७-२८॥ वैसे दो दण्ड का एक मुहूर्त (घटी) होता है, और चार घटी का एक याम (प्रहर), आठ याम का एक दिन-रात तथा पन्द्रह दिन का एक पक्ष (पाख), दो पक्ष (पाख) का एक मास और बारह मास का एक वर्ष होता है। मनुष्यों का एक मास पितरों का एक अहोरात्र ही होता है ॥२९-३०॥ उनका दिन कृष्ण पक्ष में और रात्रि शुक्ल पक्ष में होती है। मनुष्यों का एक वर्ष देवों का एक दिन-रात होता है ॥३१॥ उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायन उनकी रात्रि है। हे नृप! युग-कर्म के अनुरूप मनुष्य आदि की आयु होती है ॥३२॥ अब प्रकृति, प्राकृत पदार्थ एवं ब्रह्मा आदि की भी आयु कह रहा हूँ, सुनो! कृत (सत्य) त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं ॥३३॥ जो दिव्य बारह सहस्र वर्ष के होते हैं। उन्हें सावधानी से सुनो। कृत (सत्य) चार सहस्र, त्रेता तीन सहस्र, द्वापर दो सहस्र और कलि एक सहस्र वर्ष का होता है, इनके सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दो सहस्र वर्ष के होते हैं। मनुष्यों के वर्ष प्रमाण से चारों युग तैंतालीस लाख बीस सहस्र (हजार) वर्ष के होते हैं ॥३४-३५॥ अब चारों युगों का पृथक्-पृथक् वर्ष प्रमाण मनुष्यों के मान से बता रहा हूँ—सत्रह लाख अट्ठाइस सहस्र वर्ष का कृत (सत्य) युग होता है, ऐसा संख्या-वेत्ताओं ने मनुष्यों के मान से बताया है। उसी भाँति बारह लाख छानवे सहस्र वर्ष का त्रेता युग, आठ लाख चौंसठ सहस्र वर्ष का द्वापर और चार लाख बत्तीस सहस्र वर्ष का कलियुग होता है, ऐसा संख्या-वेत्ताओं और काल के पण्डितों ने बताया है ॥३६-४०॥ इनमें

यथा सप्त च वारा वै तिथयः षोडश स्मृताः । दिवारात्र्यश्च पक्षौ द्वौ मासो वर्षं च निर्मितम् ॥४१॥
यथा भ्रमति तच्चक्रमेवमेव चतुर्युगम् । यथा युगानि राजेन्द्र तथा मन्वन्तराणि च ॥४२॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । एवं क्रमाद्भ्रमन्त्येव मनवश्च चतुर्दश ॥४३॥
पञ्चविंशतिसाहस्रं षष्ट्यन्तशतपञ्चकम् । नरमानयुगं चैव परं मन्वन्तरं स्मृतम् ॥४४॥
आख्यानं च मनूनां च धर्मिष्ठानां नराधिप । यच्छ्रुतं [1]शिववक्त्रेण तत्त्वं मत्तो निशामय ॥४५॥
आद्यो मनुर्ब्रह्मपुत्रः शतरूपा पतिव्रता । धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च गरिष्ठो मनुषु प्रभुः ॥४६॥
स्वायंभुवः शंभुशिष्यो विष्णुव्रतपरायणः । जीवन्मुक्तो महाज्ञानी भवतः प्रपितामहः ॥४७॥
राजसूयसहस्रं च चक्रे वै नर्मदातटे । त्रिलक्षमश्वमेधं च त्रिलक्षं नरमेधकम् ॥४८॥
गोमेधं च चतुर्लक्षं विधिवन्महदद्भुतम् । ब्राह्मणानां त्रिकोटीश्च भोजयामास नित्यशः ॥४९॥
पञ्चलक्षगवां मांसैः सुपक्वैर्घृतसंस्कृतैः । चर्व्यैश्चोष्यैर्लेह्यपेयैर्मिष्टद्रव्यैः सुदुर्लभैः ॥५०॥
[2]अमूल्यरत्नलक्षं च दशकोटिसुवर्णकम् । स्वर्णशृङ्गयुतं दिव्यं गवां लक्षं सुपूजितम् ॥५१॥
वह्निशुद्धानि वस्त्राणि मणीन्द्राणां च लक्षकम् । भूमिं च सर्वसस्याढ्यां गजेन्द्राणां च लक्षकम् ॥५२॥
त्रिलक्षमश्वरत्नं च शातकुम्भविभूषितम् । सहस्ररथरत्नं च शिबिकालक्षमेव च ॥५३॥

सात दिन, सोलह तिथियाँ, दिन और रात्रि, दो पक्ष, मास और वर्ष का निर्माण किया गया है ॥४१॥ हे राजेन्द्र ! इसमें चक्के की भाँति चारों युगों का चक्र, प्रत्येक युगों के पृथक्-पृथक् चक्र और मन्वन्तरों का चक्र घूमता रहता है ॥४२॥ इकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है। इसी भाँति चौदहों मन्वन्तर क्रमशः घूमा करते हैं ॥४३॥ मनुष्यों के मान से पच्चीस सहस्र पाँच सौ साठ युगों का एक मन्वन्तर होता है ॥४४॥ हे नराधिप ! धर्मिष्ठ मनुष्यों का आख्यान मैंने शिवजी के मुख से जैसा सुना है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥४५॥ आदि मनु, जो ब्रह्मा के पुत्र एवं शतरूपा के पति हैं, धर्मिष्ठों में श्रेष्ठ, गौरव पूर्ण एवं मनुओं में समर्थ हैं ॥४६॥ स्वायम्भुव मनु शंकर जी के शिष्य हैं और भगवान् विष्णु के व्रत का पालन करते रहते हैं। वे जीवन्मुक्त, महाज्ञानी एवं आपके प्रपितामह (परदादा) हैं ॥४७॥ उन्होंने नर्मदा जी के तट पर एक सहस्र राजसूय यज्ञ, तीन लाख अश्वमेध, तीन लाख नरमेध और चार लाख गोमेध यज्ञ सविधान सुसम्पन्न किये हैं, जिनका आयोजन महान् एवं अद्भुत था, उसमें तीन करोड़ ब्राह्मण नित्य भोजन करते थे ॥४८-४९॥ जिसमें पाँच लाख गौओं के घृत में भली भाँति पकाये मांस रहते थे और चबाने, चूसने, आस्वाद लेने (चाटने), पान करने योग्य वस्तुओं एवं अति दुर्लभ मिष्टान्नों का कुछ कहना ही नहीं है ॥५०॥ एक लाख अमूल्य रत्न, दश करोड़ सोने के सिक्के, सुवर्ण-भूषित सींगों वाली दश लाख गौएँ एवं अग्निविशुद्ध वस्त्रों के समूह एक लाख मुनिश्रेष्ठों को समर्पित किये गये। समस्त धान्यों से सम्पन्न हरी-भरी भूमि, एक लाख गजराज, सुवर्णभूषित तीन लाख उत्तम अश्व, एक सहस्र उत्तम रथ, एक लाख शिविका

---

१ क. धर्मव० । २ क. ०रत्नपात्रं च ।

त्रिकोटिस्वर्णपात्रं च सान्नं सजलमीप्सितम् । त्रिकोटिस्वर्णभूषाश्च कर्पूरादिसुवासितम् ॥५४॥
ताम्बूलं सुविचित्रं च त्रिकोटिस्वर्णतल्पकम् । रत्नेन्द्रखचितैर्मञ्चै रचितैर्विश्वकर्मणा ॥५५॥
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रै राजितं माल्यजालकैः । नित्यं ददौ ब्राह्मणेभ्यो विष्णुप्रीत्यै शिवाज्ञया ॥५६॥
संप्राप्य शंकराज्ज्ञानं कृष्णमन्त्रं सुदुर्लभम् । संप्राप्य कृष्णदास्यं च गोलोकं वै जगाम सः ॥५७॥
दृष्ट्वा मुक्तं स्वपुत्रं च प्रहृष्टोऽभूत्प्रजापतिः । तुष्टाव शंकरं तुष्टः ससृजेऽन्यं मनुं विधिः ॥५८॥
यतः स्वयंभुपुत्रोऽयमतः स्वायंभुवो मनुः । स्वारोचिषो मनुश्चैव द्वितीयो वह्निनन्दनः ॥५९॥
राजा वदान्यो धर्मिष्ठः स्वायंभुवसमो महान् । प्रियव्रतसुतावन्यौ द्वौ मनू धर्मिणां वरौ ॥६०॥
तौ तृतीयौ चतुर्थौ च वैष्णवौ तापसोत्तमौ । तौ च शंकरशिष्यौ च कृष्णभक्तिपरायणौ ॥६१॥
धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च रैवतः पञ्चमो मनुः । षष्ठश्च चाक्षुषो ज्ञेयो विष्णुभक्तिपरायणः ॥६२॥
श्राद्धदेवः सूर्यसुतो वैष्णवः सप्तमो मनुः । सावर्णिः सूर्यतनयो वैष्णवो मनुरष्टमः ॥६३॥
नवमो दक्षसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः । दशमो ब्रह्मसावर्णिर्ब्रह्मज्ञानविशारदः ॥६४॥
ततश्च धर्मसावर्णिर्मनुरेकादशः स्मृतः । धर्मिष्ठश्च वरिष्ठश्च वैष्णवव्रततत्परः ॥६५॥
ज्ञानी च रुद्रसावर्णिर्मनुश्च द्वादशः स्मृतः । धर्मात्मा देवसावर्णिर्मनुरेवं त्रयोदशः ॥६६॥
चतुर्दशो महाज्ञानी चन्द्रसावर्णिरेव च । यावदायुर्मनूनां स्यादिन्द्राणां तावदेव हि ॥६७॥
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं ब्रह्मणो दिनमुच्यते । तावती ब्रह्मणो रात्रिः सा च ब्राह्मी निशा नृप ॥६८॥

(पालकी), मन इच्छित अन्न-जल समेत तीन करोड़ सुवर्ण के पात्र, तीन करोड़ सुवर्ण के भूषण, कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल, अति विचित्र एवं सुवर्ण रचित तीन करोड़ पलंग जो विश्वकर्मा द्वारा सुरचित रत्नेन्द्र खचित, अग्नि-विशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित और चित्र-विचित्र माला-जालों से सुशोभित थे, शिव जी की आज्ञा से भगवान् विष्णु के प्रसन्नतार्थ नित्य ब्राह्मणों को समर्पित करते थे ॥५१-५६॥ अनन्तर शंकर जी से ज्ञान तथा भगवान् कृष्ण का अति दुर्लभ मन्त्र प्राप्त कर भगवान् का दास (पार्षद) बन कर वे गोलोक चले गये ॥५७॥ उस समय प्रजापति ब्रह्मा ने अपने पुत्र को मुक्त होते देख कर अति हर्ष प्रकट किया और शंकर की अति स्तुति की। अनन्तर ब्रह्मा ने पुनः अन्य मनु का सर्जन किया ॥५८॥ वे स्वयम्भु के पुत्र थे इसलिए उनका स्वायम्भुव मनु नाम था। दूसरे अग्नि के पुत्र स्वारोचिष मनु हुए, जो दानी, धर्मिष्ठ राजा एवं स्वायम्भुव के समान महान् थे। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ प्रियव्रत के दोनों पुत्र अन्य दो मनु हुए ॥५९-६०॥ जो वैष्णव, परम तापस, शिव जी के शिष्य और भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे ॥६१॥ पाँचवाँ रैवत मनु हुआ, जो धर्मात्माओं में श्रेष्ठ था। छठा चाक्षुष मनु हुए जो भगवान् विष्णु की भक्ति में तन्मय रहा करते थे ॥६२॥ सूर्यपुत्र श्राद्धदेव, जो वैष्णव थे, सातवें मनु हुए। दूसरे वैष्णव सूर्यपुत्र सावर्णिआठवें मनु हुए ॥६३॥ विष्णु के व्रत परायण दक्षसावर्णि नवें मनु हुए। दशवे ब्रह्मसावर्णि मनु हुए, जो ब्रह्मज्ञान में अति निपुण थे ॥६४॥ ग्यारहवें धर्मसावर्णि मनु हुए, जो धर्मिष्ठ, श्रेष्ठ एवं भगवान् विष्णु के व्रत में तत्पर रहते थे ॥६५॥ ज्ञानी रुद्रसावर्णि बारहवें मनु हुए। इसी प्रकार धर्मात्मा देव-सावर्णि तेरहवें मनु और महाज्ञानी चन्द्रसावर्णि चौदहवें मनु हुए। मनुओं की आयु के समान ही इन्द्रों की आयु होती

कालरात्रिश्च सा ज्ञेया वेदेषु परिकीर्तिता । ब्रह्मणो वासरं राजन्क्षुद्रकल्पः प्रकीर्तितः ॥६९॥
सप्तकल्पे चिरंजीवी मार्कण्डेयो महातपाः । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका दग्धाश्च तत्र वै ॥७०॥
उत्थितेनैव सहसा संकर्षणमुखाग्निना । चन्द्रार्कब्रह्मपुत्राश्च ब्रह्मलोकं गता ध्रुवम् ॥७१॥
ब्रह्मरात्रिव्यतीते तु पुनश्च ससृजे विधिः । तस्यां ब्रह्मनिशायां च क्षुद्रः प्रलय उच्यते ॥७२॥
देवाश्च मनवश्चैव[1] तत्र दग्धा नरादयः । एवं त्रिंशद्दिवारात्रैर्ब्रह्मणो मास एव च ॥७३॥
वर्षं द्वादशमासैश्च ब्रह्मसंबन्धि चैव हि । एवं पञ्चदशाब्दे तु गते च ब्रह्मणो नृप ॥७४॥
दैनंदिनस्तु प्रलयो वेदेषु परिकीर्तितः । ॥७५॥
मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदविद्भिः पुरातनैः । तत्र सर्वे प्रणष्टाः स्युश्चन्द्रार्कादिदिगीश्वराः ॥७६॥
आदित्या वसवो रुद्रा मनवो मानवादयः । ऋषयो मुनयश्चैव गन्धर्वा राक्षसादयः ॥७७॥
मार्कण्डेयो लोमशश्च पेचकश्चिरजीविनः । इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिश्चाकूपारश्च कच्छपः ॥७८॥
नाडीजङ्घो बकश्चैव सर्वे नष्टाश्च तत्र वै । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका नागालयास्तथा ॥७९॥
ब्रह्मलोकं ययुः सर्वे ब्रह्मपुत्रादयस्तथा । गते दैनंदिने ब्रह्मा लोकांश्च ससृजे पुनः ॥८०॥
एवं शताब्दपर्यन्तं परमायुः प्रजापतेः । ब्रह्मणश्च निपाते च महाकल्पो भवेन्नृप ॥८१॥
प्रकीर्तिता महारात्रिः सैव चेह पुरातनैः । ब्रह्मणश्च निपाते च ब्रह्माण्डौघो जलप्लुतः ॥८२॥

है। हे नृप! चौदह इन्द्रों के समय के समान ब्रह्मा का एक दिन होता है और उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। वेदों में वही कालरात्रि कही गयी है। हे राजन्! ब्रह्मा का दिन क्षुद्र (छोटा) कल्प कहा जाता है॥६६-६९॥ महातपस्वी मार्कण्डेय को ऐसे सात कल्पों तक का चिरजीवन प्राप्त है। संकर्षण (शेष) जी के सहसा उठने पर उनके मुख के अग्नि द्वारा ब्रह्मलोक से नीचे सभी लोक दग्ध हो जाते हैं। अनन्तर चन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मलोक चले जाते हैं। इस भाँति रात्रि व्यतीत होने पर ब्रह्मा पुनः उनकी सृष्टि करते हैं। उसी ब्रह्मरात्रि को क्षुद्र (छोटा) प्रलय कहा जाता है॥७०-७२॥ उसमें देववृन्द, मनुगण और मनुष्य आदि सभी जल जाते हैं। इस प्रकार तीस दिन रात्रि का ब्रह्मा का एक मास होता है और उनके बारह मास का उनका एक वर्ष होता है। हे नृप! इस भाँति ब्रह्मा के पन्द्रह वर्ष व्यतीत होने पर एक प्रलय होता है, जो दैनन्दिन नाम से वेदों में बताया गया है॥७३-७५॥ प्राचीन वेदवेत्ताओं ने इसे ही मोहरात्रि कहा है जिसमें चन्द्र, सूर्य आदि दिशाओं के अधीश्वर, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मनुवृन्द, मानव आदि, ऋषिगण, मुनिगण, गन्धर्व, राक्षस, चिरजीवी मार्कण्डेय, लोमश, पेचक, राजा इन्द्रद्युम्न, अकूपार, कच्छप, नाडीजंघ और बक सभी नष्ट हो जाते हैं। और ब्रह्मलोक के नीचे रहने वाले सभी पाताल पर्यन्त लोक जल जाते हैं एवं ब्रह्मा के पुत्र आदि ब्रह्मलोक चले जाते हैं। इस प्रकार दैनन्दिन व्यतीत होने पर ब्रह्मा पुनः उन लोकों का निर्माण करते हैं॥७६-८०॥ हे नृप! इस भाँति प्रजापति ब्रह्मा की सौ वर्ष की परमायु होती है और ब्रह्मा के अन्त होने पर महाप्रलय होता है॥८१॥ प्राचीनों ने उसे महारात्रि कहा है। ब्रह्मा के अन्त

---

१ क. मुनयश्चै०।

वेदमाता च सावित्री वेदा धर्मादयस्तथा । सर्वे प्रणष्टा मृत्युश्च प्रकृतिं च शिवं विना ॥८३॥
नारायणे प्रलीनाश्च विश्वस्था वैष्णवास्तथा । कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वरुद्रगणैः सह ॥८४॥
मृत्युंजये महादेवे प्रलीनः स तमोगुणः । ब्रह्मणश्च निपातेन निमेषः प्रकृतेर्भवेत् ॥८५॥
नारायणस्य शंभोश्च महाविष्णोश्च निश्चितम् । निमेषान्ते पुनः सृष्टिर्भवेत्कृष्णेच्छया नृप ॥८६॥
कृष्णो निमेषरहितो निर्गुणः प्रकृते परः । सगुणानां निमेषश्च कालसंख्यावयोमितः ॥८७॥
निर्गुणस्य च नित्यस्य चाऽऽद्यन्तरहितस्य च । निमेषाणां सहस्रेण प्रकृतेर्दण्ड उच्यते ॥८८॥
षष्टिदण्डात्मकस्तस्य वासरश्च प्रकीर्तितः । त्रिंशद्रात्रिदिनैर्मासो वर्षं द्वादशमासकैः ॥८९॥
एवं गते शताब्दे च श्रीकृष्णे प्रकृतेर्लयः । प्रकृत्यां च प्रलीनायां श्रीकृष्णे प्राकृतो लयः ॥९०॥
सर्वान्संहृत्य सा चैका महाविष्णोः प्रसूश्च या । कृष्णवक्षसि लीना च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥९१॥
सन्तो वदन्ति तां दुर्गां विष्णुमायां सनातनीम् । सर्वशक्तिस्वरूपां च परां नारायणीं सतीम् ॥९२॥
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवीं च[1] कृष्णस्य त्रिगुणात्मिकाम् । यन्मायामोहिताश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥९३॥
वैष्णवास्तां महालक्ष्मीं परां राधां वदन्ति ते । यदर्धाङ्गा महालक्ष्मीः प्रिया नारायणस्य च ॥९४॥
प्राणाधिष्ठातृदेवीं च प्रेम्णा प्राणाधिकां वराम् । स्थिरप्रेममयीं शक्तिं निर्गुणां निर्गुणस्य च ॥९५॥

होने पर ब्रह्माण्ड-समूह जल में डूब जाता है। उसमें देवमाता, सावित्री, वेद, धर्म आदि एवं मृत्यु का भी नाश हो जाता है, केवल शिव और प्रकृति शेष रहते हैं॥८२-८३॥ विश्व के समस्त वैष्णव नारायण में विलीन हो जाते हैं और समस्त रुद्रगणों समेत संहार करने वाले कालाग्नि रुद्र, मृत्युञ्जय महादेव में लीन होते हैं, क्योंकि वे तमोगुण स्वरूप हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के पतन होने पर प्रकृति का एक निमेष (क्षण) होता है। हे नृप! निमेष के अन्त में नारायण (विष्णु), शिव और महाविष्णु आदि की सृष्टि भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से आरम्भ हो जाती है॥८४-८६॥ भगवान् श्रीकृष्ण, निमेषरहित, निर्गुण और प्रकृति से परे हैं। उनके सगुण रूप का निमेष, काल-संख्या और आयु परिमित होती है किन्तु गुणहीन, नित्य, आदि-अन्त रहित की परिमितता (इयत्ता) नहीं होती है। प्रकृति के सहस्र निमेष का उसका एक दण्ड होता है, साठ दण्ड का एक दिन, तीस दिन का मास और बारह मास का वर्ष होता है॥८७-८९॥ इस प्रकार प्रकृति के सौ वर्ष व्यतीत होने पर भगवान् श्रीकृष्ण में उसका लय हो जाता है और प्रकृति के श्रीकृष्ण में विलीन होने पर वह प्राकृतलय कहा जाता है॥९०॥ इस भाँति महाविष्णु की जननी प्रकृति जो ईश्वरी एवं मूल प्रकृति कही जाती है, अपने में सबका संहरण कर के स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में विलीन हो जाती है॥९१॥ जिसे सन्त महात्मागण दुर्गा, विष्णु-माया, सनातनी, समस्त शक्ति रूप और सर्वश्रेष्ठ सती नारायणी कहते हैं॥९२॥ वही भगवान् श्रीकृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है, जिसकी माया से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव मोहित रहा करते हैं॥९३॥ वैष्णवगण उसे ही महालक्ष्मी एवं सर्वोत्तम राधा कहते हैं, जो नारायण की अर्द्धांगिनी एवं प्रिया महालक्ष्मी है॥९४॥ वह उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, प्रेमतः प्राण से अधिक प्रिय एवं श्रेष्ठा है, और निर्गुण की स्थिरप्रेममयी निर्गुणा शक्ति है॥९५॥ नारायण (विष्णु) और शिव (अपने में) अपने-अपने

---

१ क. °च श्रीकृष्णस्यैव निर्गुणम् ।

नारायणश्च शंभुश्च संहृत्य स्वगणान्बहून् । शुद्धसत्त्वस्वरूपी श्रीकृष्णे लीनश्च निर्गुणे ॥९६॥
गोपा गोप्यश्च गावश्च सवत्साश्च नराधिप । सर्वे लीनाः प्रकृत्यां च प्रकृतिः परमेश्वरे ॥९७॥
महाविष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः । महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैवं परमात्मनि ॥९८॥
प्रकृतिर्योगनिद्रा च श्रीकृष्णनयनद्वये । अधिष्ठानं चकारैवं मायया चेश्वरेच्छया ॥९९॥
प्रकृतेर्वासरो यावन्मितः कालः प्रकीर्तितः । तावद्वृन्दावने निद्रा कृष्णस्य परमात्मनः ॥१००॥
अमूल्यरत्नतल्पे च वह्निशुद्धांशुकार्चिते । गन्धचन्दनमाल्यौघवाय्वादिसुरभीकृते ॥१०१॥
पुनः प्रजागरे तस्य सर्वसृष्टिर्भवेत्पुनः । एवं सर्वे प्राकृताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना ॥१०२॥
तद्वन्दनं तत्स्मरणं तस्य ध्यानं तदर्चनम् । कीर्तनं तद्गुणानां च महापातकनाशनम् ॥१०३॥
एतत्ते कथितं सर्वं यद्यन्मृत्युंजयाच्छ्रुतम् । यथागमं महाराज किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०४॥

सुयज्ञ उवाच

कालाग्निरुद्रो विश्वानां संहर्ता च तमोगुणः । ब्रह्मणोऽन्ते विलीनश्च सत्त्वं मृत्युंजये शिवे ॥१०५॥
शिवो लीनो निर्गुणे च श्रीकृष्णे प्राकृते लये । कथं तव गुरोर्नाम मृत्युंजय इति श्रुतम् ॥१०६॥
कथं प्रसूर्महाविष्णोर्मूलप्रकृतिरीश्वरी । असंख्यानि च विश्वानि सन्ति वै यस्य लोमसु ॥१०७॥

गणों का संहरण कर के शुद्ध सत्त्व रूप से निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं ॥९६॥ हे नराधिप ! गोप, गोपी, बछड़ों समेत गौएँ प्रकृति में लीन होती हैं और प्रकृति परमेश्वर में ॥९७॥ सब छोटे विष्णु महाविष्णु में लीन होते हैं, महाविष्णु प्रकृति में और प्रकृति परमात्मा में विलीन होती है ॥९८॥ ईश्वरेच्छया प्रकृति योगनिद्रा होकर भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों नेत्रों पर माया से अपना अधिष्ठान बनाती है ॥९९॥ इस भाँति प्रकृति का वासर (दिन) काल जितने समय का रहता है, उतने समय तक वृन्दावन में परमात्मा श्रीकृष्ण को निद्रा रहती है ॥१००॥ वे अमूल्य रत्नों की शय्या पर, जो अग्नि विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित एवं गन्ध, चन्दन तथा मालाओं की वायु से अति सुवासित रहती है, शयन करते हैं। उनके जागने पर पुनः सब की सृष्टि होने लगती है, इस प्रकार केवल निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त सभी प्राकृत (प्रकृति से उत्पन्न) कहे जाते हैं। अतः उनका वन्दन, स्मरण, ध्यान, अर्चन और उनके गुणों का कीर्तन करना महापाप का नाश करता है। हे महाराज ! मृत्युञ्जय के मुख से मैंने आगमानुसार जो कुछ सुना था, वह तुम्हें सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥१०१-१०४॥

सुयज्ञ बोले—विश्व के संहर्ता कालाग्नि रुद्र, जो तमोगुण रूप हैं, ब्रह्मा का अन्त होने पर सत्त्व रूप से मृत्युञ्जय शिव में विलीन होते हैं ॥१०५॥ और शिव जी प्राकृत लय के समय निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं। तो तुम्हारे गुरु शिव मृत्युञ्जय कैसे कहे जाते हैं ? ॥१०६॥ और जिस महाविष्णु के लोम में असंख्य विश्व सुनिहित रहता है, ईश्वरी मूल प्रकृति उनकी जननी कैसे कही जाती है ? ॥१०७॥

सुतपा उवाच

ब्रह्मणोऽन्ते मृत्युकन्या प्रणष्टा जलबिन्दुवत्। संहर्त्री सर्वलोकानां ब्रह्मादीनां नराधिप ॥१०८॥
कतिधा मृत्युकन्यानां ब्रह्मणां कोटिशो लये। कालेन लीनः शंभुश्च सत्त्वरूपेच निर्गुणे ॥१०९॥
मृत्युकन्या जिता शश्वच्छिवेन गुरुणा मम। न मृत्युना जितः शंभुः कल्पे कल्पे श्रुतौ श्रुतम् ॥११०॥
शंभुर्नारायणस्यैव प्रकृतेश्च नराधिप। नित्यानां लीनता नित्ये तन्माया न तु वास्तवी ॥१११॥
स्वयं पुमान्निर्गुणश्च कालेन सगुणः स्वयम्। स्वयं नारायणः शंभुर्मायया प्रकृतिः स्वयम् ॥११२॥
तदंशस्तत्समः शश्वद्यथा वह्नेः स्फुलिङ्गवत्। ये ये च ब्रह्मणा सृष्टा रुद्रादित्यादयस्तथा ॥११३॥
कल्पे कल्पे जितास्ते ते नश्वरा मृत्युकन्यया। न शिवो ब्रह्मणा सृष्टः सत्यो नित्यः सनातनः ॥११४॥
कतिधा ब्रह्मणां पातो यन्निमेषेण भूमिप। अथाऽऽदिसर्गे श्रीकृष्णः प्रकृत्यां च जगद्गुरुः ॥११५॥
चकार वीर्याधानं च पुण्ये वृन्दावने वने। तद्वामांशसमुद्भूता रासे रासेश्वरी परा ॥११६॥
गर्भं दधार सा राधा यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ततः सुषाव सा डिम्भं गोलोके रासमण्डले ॥११७॥
चुकोप डिम्भं सा दृष्ट्वा हृदयेन विदूयता। तड्डिम्भं प्रेरयामास तदधो विश्वगोलके ॥११८॥

सुतपा बोले—हे नराधिप! ब्रह्मा के अन्त होने पर मृत्युकन्या जो समस्त लोकों के समेत ब्रह्मा आदि का संहार करती है, जलविन्दु की भाँति स्वयं नष्ट हो जाती है, ॥१०८॥ इस प्रकार कितनी मृत्यु-कन्याओं और करोड़ों ब्रह्मा के लय होने के अनन्तर शिव जी अवसर देखकर सत्त्व रूप एवं निर्गुण (श्रीकृष्ण) में लीन हो जाते हैं॥१०९॥ मेरे गुरु शिव जी ने ही मृत्युकन्या को जीता है, न कि मृत्यु ने शंकर जी को, ऐसा प्रत्येक कल्प में वेद में सुना गया है॥११०॥ हे नराधिप! शिव, नारायण और प्रकृति ये तीनों नित्य हैं, अतः नित्य में नित्यों की लीनता उनकी माया है, वास्तव में नहीं है॥१११॥ क्योंकि स्वयं पुरुष निर्गुण है और वही समय पाकर सगुण होता है। स्वयं नारायण ही शिव हैं और माया से स्वयं प्रकृति है॥११२॥ जो अग्नि की चिनगारी की भाँति उसी का अंश और निरन्तर उसी के समान है। ब्रह्मा द्वारा रुद्र, आदित्य आदि जिन-जिन की प्रत्येक कल्पों में सृष्टि होती है, वे मृत्यु कन्या द्वारा विजित होने के नाते नश्वर हैं। किन्तु शिव की सृष्टि ब्रह्मा द्वारा नहीं होती है, वे सत्य, नित्य एवं सनातन हैं॥११३-११४॥ हे भूमिप! जिनके निमेष मात्र से कितने ब्रह्मा का पतन हो जाता है। वे जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टि के आदि में वृन्दावन नामक पुण्य स्थान में प्रकृति में वीर्याधान करते हैं। उस समय रासमण्डल में उनके बाँयें भाग से सर्वश्रेष्ठा रासेश्वरी राधा उत्पन्न होती हैं। जो भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा वीर्याधान करने पर ब्रह्मा की आयु तक उस गर्भ को धारण किए रहती हैं। अनन्तर गोलोक के रासमण्डल में डिम्भ (अंड) को उत्पन्न करती हैं॥११५-११७॥ किन्तु उसे देख कर उन्हें महान् क्रोध उत्पन्न होता है जिससे हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई वे उस डिम्भ (अंडे) को गोलोक से नीचे विश्व के कुण्डों में फेंक देती हैं॥११८॥

त्यक्त्वाऽपत्यं महादेवी रुरोद च मुहुर्मुहुः। कृष्णस्तां बोधयामास महायोगेन योगवित् ॥११९॥
बभूव तस्माद्विडम्भाच्च सर्वाधारो महाविराट् ॥१२०॥

सुयज्ञ उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम। शापो मे वररूपश्चाप्यभवद्भुक्तिकारणम् ॥१२१॥
सुदुर्लभा हरेर्भक्तिः सर्वमङ्गलमङ्गला। न तस्याश्च समं विप्र वेदोक्तं भक्तिपञ्चकम् ॥१२२॥
यथा भक्तिर्मम भवेच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि। सुदुर्लभा च सर्वेषां तत्कुरुष्व महामुने ॥१२३॥
नहयम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् ॥१२४॥
सर्वेषामाश्रमाणां च द्विजातेर्जातिरुत्तमा। स्वधर्मनिरतश्चैव तेषु श्रेष्ठश्च भारते ॥१२५॥
कृष्णमन्त्रोपासकश्च कृष्णभक्तिपरायणः। नित्यं नैवेद्यभोजी च ततः श्रेष्ठो महाञ्छुचिः ॥१२६॥
त्वां वैष्णवं द्विजश्रेष्ठं महाज्ञानार्णवं परम्। संप्राप्य शिवशिष्यं च कं यामि शरणं मुने ॥१२७॥
अधुनाऽहं गलत्कुष्ठी तव शापान्महामुने। कथं तपस्यामशुचिर्नाधिकारी करोमि च ॥१२८॥

इस प्रकार सन्तान त्याग कर वह महादेवी बार-बार रुदन करती है और योगवेत्ता भगवान् श्रीकृष्ण महायोग द्वारा उन्हें बोध कराते (समझाते) हैं॥११९॥ उसी अंडे से समस्त का आधार महाविराट् (महाविष्णु) उत्पन्न होता है॥१२०॥

सुयज्ञ बोले—आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन सार्थक हुआ और यह शाप वरदान रूप में मिला है, क्योंकि इसी कारण भक्ति प्राप्त हुई है॥१२१॥ हे विप्र! भगवान् की भक्ति समस्त मंगलों का मंगल होने के नाते अति दुर्लभ है और वेद में कही हुई पाँच प्रकार की भक्ति, उसके समान नहीं है। हे महामुने! उन परमात्मा श्रीकृष्ण में जिस प्रकार मेरी भक्ति उत्पन्न हो, जो सबको अति दुर्लभ है, वही उपाय करने की कृपा करें॥१२२-१२३। क्योंकि तीर्थ जलमय ही नहीं होते हैं और न देव मिट्टी पत्थरों में ही रहते हैं। वे लम्बे समय में पवित्र करते हैं और भगवान् कृष्ण के भक्त देखते ही पवित्र कर देते हैं॥१२४॥ सभी आश्रमों में द्विजाति की जाति अति उत्तम कही गयी है, उसमें भी जो अपने धर्म का पालन करने में लगा रहता है वह श्रेष्ठ है॥१२५॥ कृष्ण मन्त्र की उपासना करने वाला, उनकी भक्ति में लीन रहने वाला, और नित्य उनके नैवेद्य का भोजन करने वाला व्यक्ति महान् पवित्र होता है, अतः वह उस (द्विज) से श्रेष्ठ है॥१२६॥ हे मुने! शंकर के शिष्य, द्विजों में श्रेष्ठ, विष्णु के भक्त तथा महान् ज्ञानसागर आपको पाकर मैं अन्य किसकी शरण में जाऊँ। हे महामुने! इस समय आपके शाप द्वारा हमें गलित-कुष्ठ हो गया है, अतः अशुद्ध रहने के नाते मुझे तपस्या करने का अधिकार नहीं है। इसलिए मैं तप नहीं कर सकता हूँ॥१२७-१२८॥

सुतपा उवाच

हरिभक्तिप्रदात्री सा विष्णुमाया सनातनी। सा च याननुगृह्णाति तेभ्यो भक्तिं ददाति च ॥१२९॥
यांश्च माया मोहयति तेभ्यस्तां न ददाति च। करोति वञ्चनां तेषां नश्वरेण धनेन च ॥१३०॥
कृष्णप्रेममयीं शक्तिं प्राणाधिष्ठातृदेवताम्। भज राधां निर्गुणां तां प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् ॥१३१॥
शीघ्रं यास्यसि गोलोकं तदनुग्रहसेवया। या सेविता श्रीकृष्णेन सर्वाराध्येन पूजिता ॥१३२॥
ध्यानसाध्यं दुराराध्यं भक्ताः संसेव्य निर्गुणम्। सुचिरेण च गोलोकं प्रयान्ति बहुजन्मतः ॥१३३॥
कृपामयीं च संसेव्य भक्ता यान्त्यचिरेण वै। सा प्रसूश्च महाविष्णोः [1]सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥१३४॥
विप्रपादोदकं भुङ्क्ष्व वर्षं च संयतः शुचिः। कामदेवस्वरूपश्च रोगहीनो भविष्यसि ॥१३५॥
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥१३६॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे। सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥१३७॥
विप्रपादोदकं चैव पापव्याधिविनाशनम्। सर्वतीर्थोदकसमं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१३८॥
विप्रो मानवरूपी च देवदेवो जनार्दनः। विप्रेण दत्तं द्रव्यं च भुञ्जते सर्वदेवताः ॥१३९॥

सुतपा बोले—भगवान् विष्णु की सनातनी माया भगवान् की भक्ति प्रदान करती है। वह जिसके ऊपर अनुग्रह करती है, उन्हें भक्ति प्रदान करती है॥१२९॥ वह माया जिन्हें मोहित करती है, उन्हें नश्वर वस्तुएँ—धन आदि देकर भक्ति से वंचित रखती है॥१३०॥ अतः उस राधा को भजो, जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेममयी शक्ति, उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवता, निर्गुण और समस्त सम्पदा प्रदान करने वाली है॥१३१॥ सेवा करने पर उनकी कृपा से शीघ्र गोलोक प्राप्त करोगे, क्योंकि सभी के आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी सेवा-पूजा स्वयं की है॥१३२॥ ध्यानसाध्य, दुराराध्य एवं निर्गुण श्री कृष्ण की सम्यक् सेवा करके भक्त जन सुदीर्घकाल किंवा अनेक जन्मों के पश्चात् गोलोक प्राप्त करते हैं॥१३३॥ किन्तु उस कृपामयी जननी की सेवा करने पर भक्तगण थोड़े काल में ही गोलोक चले जाते हैं और समस्त सम्पत्ति स्वरूप वाली यही महाविष्णु की जननी है॥१३४॥ अतः तुम संयमपूर्वक एक वर्ष तक ब्राह्मण का चरणोदक पान करो, उससे तुम्हें कामदेव के समान रूप प्राप्त होगा और नीरोग हो जाओगे॥१३५॥ क्योंकि ब्राह्मण के चरणोदक से पृथ्वी जब तक भीगी रहती है, उतने दिनों तक पितर गण कमल के पत्ते में जलपान करते हैं॥१३६॥ पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं उतने ही सागर में भी हैं और सागर में जितने तीर्थ हैं उतने ही ब्राह्मणों के चरणों में भी रहते हैं॥१३७॥ इस कारण ब्राह्मण का चरणोदक समस्त रोगों का नाशक, समस्त तीर्थों के जल के समान भुक्ति-मुक्ति-दायक और शुभ है॥१३८॥ क्योंकि मनुष्य रूप में ब्राह्मण देवाधिदेव जनार्दन हैं और ब्राह्मणों द्वारा दी गई वस्तुओं का उपभोग सभी देव करते हैं॥१३९॥

---

१ क. ०र्वशक्तिस्व०।

इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च गृहीत्वा तस्य पूजनम् । जगाम गृहमित्युक्त्वा त्वायास्ये वत्सरान्तरे ॥१४०॥
भक्त्या च बुभुजे राजा विप्रपादोकं शिवे । विप्रांश्च पूजयामास भोजयामास वत्सरम् ॥१४१॥
संवत्सरे व्यतीते तु निर्मुक्तो व्याधितो नृपः । आजगाम मुनिश्रेष्ठः सुतपाः कश्यपाग्रणीः ॥१४२॥
राधापूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं मनुम् । ध्यानं च सामवेदोक्तं ददौ तस्मै नृपाय सः ॥१४३॥
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रमित्युक्त्वा तपसे मुनिः । जगाम स्वालयाद्दुर्गं निर्जगाम त्वरन्नृपः ॥१४४॥
रुरुदुर्बान्धवाः सर्वे त्रिरात्रं शोकमूर्च्छिताः । भार्याश्च तत्यजुः प्राणान्पुत्रो राजा बभूव ह ॥१४५॥
सुयशः पुष्करं गत्वा चक्रे वै दुष्करं तपः । दिव्यं वर्षशतं राजा जजाप परमं मनुम् ॥१४६॥
तदा ददर्श गगने रथस्थां परमेश्वरीम् । स तद्दर्शनमात्रेण निष्पापश्च बभूव ह ॥१४७॥
तत्याज मानुषं देहं दिव्यां मूर्तिं दधार ह । सा देवी तेन यानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च ॥१४८॥
नृपं नीत्वा च गोलोकं तत्र चैषा ययौ तदा । राजा ददर्श गोलोकं नद्या विरजयाऽऽवृतम् ॥१४९॥
वेष्टितं पर्वतेनैव शतशृङ्गेण चारुणा । श्रीवृन्दावनसंयुक्तं रासमण्डलमण्डितम् ॥१५०॥
गोगोपगोपीनिकरैः शोभितं परिसेवितैः । रत्नेन्द्रसारखचितैर्मन्दिरैः सुमनोहरैः ॥१५१॥
नानाचित्रविचित्रैश्च राजितं परिशोभितम् । सप्तत्रिंशद्भिराक्रीडैः कल्पवृक्षसमन्वितैः ॥१५२॥
पारिजातद्रुमाकीर्णैर्वेष्टितं कामधेनुभिः । आकाशवत्सुविस्तीर्णं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत् ॥१५३॥

इतना कह कर वह ब्राह्मण उनकी पूजा ग्रहण करने के अनन्तर अपना घर चला गया और कहता गया कि—'वर्ष बीतने पर मैं पुनः आऊँगा।' ॥१४०॥ हे शिवे! उसके पश्चात् राजा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों का चरणोदक पान कर उनकी पूजा करने लगा। उन्हें वर्ष भर भोजन भी कराया। वर्ष के व्यतीत होते ही वह राजा नीरोग हो गया और उसी समय वह मुनिश्रेष्ठ सुतपा, जो कश्यप-गोत्रों में अग्रसर थे, वहाँ पुनः आ पहुँचे। उन्होंने राजा को राधा जी का पूजा-विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र, और सामवेदानुसार ध्यान बताया ॥१४१-१४३॥ और कहा—'हे राजन्! अब तप के लिए शीघ्र चले जाओ।' इतना कह कर मुनि के चले जाने पर राजा ने भी अपने भवन से प्रस्थान कर दिया ॥१४४॥ उनके वियोग में, बान्धवगण तीन रात्रि तक शोक-निमग्न पड़े रहे और स्त्रियों ने तो प्राण परित्याग ही कर दिया। अन्त में उनका पुत्र राजसिंहासन पर सुशोभित हुआ ॥१४५॥ राजा सुयज्ञ ने पुष्कर जाकर दिव्य सौ वर्षों तक उस परम मन्त्र का जप करते हुए अति कठिन तप किया ॥१४६॥ अनन्तर आकाश में रथ पर सुशोभित परमेश्वरी राधा का दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ, जिससे ये उसी समय पापरहित हो गये ॥१४७॥ एवं अपनी मनुष्य-देह का त्याग कर दिव्य शरीर धारण किया और रत्नेन्द्र-निर्मित उस रथ पर देवी के साथ बैठ कर राजा गोलोक चले गये। वहाँ पहुँच कर राजा ने विरजा नदी से आवृत (घिरा) उस गोलोक को देखा, जो सौन्दर्यपूर्ण सौ शिखरों वाले पर्वत से वेष्टित, श्रीवृन्दावन से युक्त एवं रासमण्डल से विभूषित था ॥१४८-१५०॥ गौओं, गोपों और गोपियों के वृन्दों से सुसेवित होने के नाते अति सुशोभित, उत्तम रत्नों के सार भागों से खचित, अति मनोहर एवं चित्र-विचित्र मन्दिरों से सुविराजित था। एवं क्रीडा स्थान वाले सैंतीस कल्पवृक्षों से युक्त, पारिजात से आच्छादित, कामधेनुओं से पूर्ण, आकाश की भाँति अति विस्तृत और चन्द्र बिम्ब के समान गोलाकार था ॥१५१-१५३॥

अत्यूर्ध्वमपि वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम् । शून्ये स्थितं निराधारं ध्रुवमेवेश्वरेच्छया ॥१५४॥
आत्माकाशसमं नित्यमस्माकं च सुदुर्लभम् । अहं नारायणोऽनन्तो ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट् ॥१५५॥
धर्मक्षुद्रविराट्संघो गङ्गा लक्ष्मी सरस्वती । त्वं विष्णुमाया सावित्री तुलसी च गणेश्वरः ॥१५६॥
सनत्कुमारः स्कन्दश्च नरनारायणावृषी। कपिलो दक्षिणा यज्ञो ब्रह्मपुत्राश्च योगिनः ॥१५७॥
पवनो वरुणश्चन्द्रः सूर्यो रुद्रो हुताशनः । कृष्णमन्त्रोपासकाश्च भारतस्थाश्च वैष्णवाः ॥१५८॥
एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्टः कदाचन। निरामये च तत्रैव रत्नसिंहासने स्थितम् ॥१५९॥
रत्नमालाकिरीटैश्च भूषितं रत्नभूषणैः । सुनिर्मलैः पीतवस्त्रैर्वह्निशुद्धैर्विराजितम् ॥१६०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं किशोरं गोपरूपिणम् । नवीननीरदश्यामं श्वेतपङ्कजलोचनम् ॥१६१॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१६२॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ध्यानसाध्यं दुराराध्यमस्माकं च सुदुर्लभम् ॥१६३॥
प्रियैर्द्वादशगोपालैः सेवितं श्वेतचामरैः । वीक्षितं गोपिकावृन्दैः सस्मितैः सुमनोहरैः ॥१६४॥
पीडितैः कामबाणैश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनैः । वह्निशुद्धांशुकाधानै रत्नभूषणभूषितैः ॥१६५॥
रासमण्डलमध्यस्थं श्रीकृष्णं च परात्परम्। ददर्श राजा तत्रैव राधया दर्शितं तदा ॥१६६॥
स्तुतं चतुर्भिर्वेदैश्च मूर्तिमद्भिर्मनोहरैः । रागिणीनां च रागाणामतीव सुमनोहरम् ॥१६७॥

वैकुण्ठ लोक से अत्यन्त ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर स्थित एवं ईश्वरेच्छया शून्य प्रदेश में निराधार होते हुए ध्रुव की भाँति अटल था ॥१५४॥ वह आत्मा और आकाश की भाँति नित्य तथा हम लोगों के लिए भी अति दुर्लभ है। मैं, नारायण, अनन्त, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट् (महाविष्णु), धर्म, क्षुद्रविष्णु-वृन्द, गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती, तुम, विष्णुमाया, सावित्री, तुलसी, गणेश्वर, सनत्कुमार, स्कन्द, नर-नारायण दोनों ऋषि, कपिल, दक्षिणा, यज्ञ, ब्रह्मा के योगी पुत्रगण, वायु, वरुण, चन्द्र, सूर्य, रुद्र, अग्नि और भारत के रहने वाले एवं भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र की आराधना करने वाले वैष्णव वृन्द, इन्हीं लोगों ने गोलोक को देखा है अन्य कोई नहीं। उसी गोलोक में निरामय (सुरचित) रत्नसिंहासन पर भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं, जो रत्नों की माला, किरीट, रत्नों के भूषणों से भूषित, अतिनिर्मल एवं अग्नि की भाँति विशुद्ध पीताम्बर से सुसज्जित हैं ॥१५५-१६०॥ सर्वाङ्ग में चन्दन लगाये किशोरावस्था तथा गोपरूप धारण किये हुए हैं। जो नये मेघ के समान श्यामल और श्वेतकमल की भाँति नेत्र वाले एवं शारदीय पूर्णचन्द्रमा के समान मुख वाले हैं। वे मन्द मुसुकान से युक्त एवं मनोहर हैं। दो भुजाओं से युक्त, हाथ में मुरली लिये हुए, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, स्वेच्छामय, परब्रह्म, निर्गुण, प्रकृति से परे, ध्यान द्वारा ही साध्य होने वाले अन्यथा दुराराध्य और हम लोगों के लिए अति दुर्लभ हैं ॥१६१-१६३॥ उनकी सेवा में बारह प्रिय गोपाल श्वेत चामर डुला रहे हैं, गोपियों का अति मनोहर समूह मन्द मुसुकान भरी चितवन से देख रहा है, जो अति स्थायी यौवन से निरन्तर भूषित, काम के बाणों से आहत, अग्निविशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित और रत्नों के भूषणों से विभूषित था ॥१६४-१६५॥ अनन्तर राजा ने राधिका जी द्वारा दिखाये गए परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण को रत्नसिंहासन पर सुविराजमान देखा, जो मनोहर मूर्ति धारण किये चारों वेदों द्वारा स्तुत, राग-रागिनियों से

श्रुतवन्तं च संगीतं यन्त्रवक्त्रोत्थितं शिवे। नित्यया च सनातन्या प्रकृत्या च सह त्वया ॥१६८॥
शश्वत्पूजितपादाब्जमखण्डतुलसीदलैः। कस्तूरीकुङ्कुमार्द्रैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः ॥१६९॥
दूर्वाभिरक्षताभिश्च पारिजातप्रसूनकैः। निर्मलैर्विरजातोयैर्दत्ताघ्यैरतिशोभितम् ॥१७०॥
सुप्रसन्नं स्वतन्त्रं च सर्वकारणकारणम्। सर्वेषां चान्तरात्मानं सर्वेशं सर्वजीवनम् ॥१७१॥
सर्वाधारं परं[1] पूज्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सर्वसंपत्स्वरूपं च दातारं सर्वसंपदाम् ॥१७२॥
सर्वमङ्गलरूपं च सर्वमङ्गलकारणम्। सर्वमङ्गलदं सर्वमङ्गलानां च मङ्गलम् ॥१७३॥
तं दृष्ट्वा नृपतिस्त्रस्तो ह्यवरुह्य रथात्त्वरन्। साश्रुनेत्रः पुलकितो मूर्ध्ना स प्रणनाम च ॥१७४॥
परमात्मा ददौ तस्मै स्वदास्यं च शुभाशिषम्। स्वभक्तिं निश्चलां सत्यामस्माकं च सुदुर्लभाम् ॥१७५॥
राधाऽवरुह्य स्वरथात्कृष्णवक्षस्युवास सा। गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेविता श्वेतचामरैः ॥१७६॥
संभाषिता श्रीकृष्णेन सस्मितेन च पूजिता। समुत्थितेन सहसा भक्त्या वै संभ्रमेण च ॥१७७॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं च माधवम्। प्रवदन्ति च वेदेषु वेदविद्भिः पुरातनैः ॥१७८॥
विपर्ययं ये वदन्ति ये निन्दन्ति जगत्प्रसूम्। कृष्णप्राणाधिकां प्रेममयीं शक्तिं च राधिकाम् ॥१७९॥

आवृत होने के नाते अति मनोहर थे। हे शिवे! नित्य सनातनी प्रकृति रूप तुम्हारे साथ, यंत्र-मुख से निकले हुए संगीत को वे सुन रहे थे ॥१६६-१६८॥ उनके चरण कमल की निरन्तर पूजा हो रही थी, जो कस्तूरी, कुंकुम से आर्द्र, गन्ध एवं चन्दन-चर्चित अखण्ड तुलसी दल अक्षत-दूर्वादल, पारिजात (मन्दार) के पुष्पों और विरजा नदी के जल के दिए गये अर्घ्य से अति शोभित थे तथा जो स्वयं अति प्रसन्न, स्वतन्त्र, समस्त कारणों के कारण, सभी के अन्तरात्मा, सर्वाधीश, सब के जीवन, सबके आधार, परमपूज्य, ब्रह्म, सनातन ज्योतिः-स्वरूप, समस्त सम्पत्ति स्वरूप, सम्पूर्ण सम्पदाओं के प्रदाता, समस्त मंगल स्वरूप, सम्पूर्ण मंगलों के कारण, सर्व-मंगलप्रद और समस्त मंगलों के मंगल हैं ॥१६९-१७३॥ उन्हें देख कर राजा ने भयभीत होकर सजल नयन और रोमाञ्चित होते हुए रथ से उतर कर शीघ्र शिर से प्रणाम किया ॥१७४॥ उपरान्त परमात्मा ने शुभ आशीर्वाद देकर उन्हें अपना दास (पार्षद) बनाया और अपनी निश्चल एवं सत्य भक्ति भी प्रदान की जो हम लोगों को अति दुर्लभ है ॥१७५॥ अनन्तर राधा अपने रथ से उतर कर भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर निवसित हो गयीं और उनकी अत्यन्त प्रेयसी गोपियाँ श्वेत चामरों से उनकी सेवा करने लगीं ॥१७६॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने भी मन्द हास करते हुए उनसे प्रेमालाप और पूजा तथा सहसा खड़े होकर भक्तिपूर्वक सम्मान किया ॥१७७॥ (इस कारण) पहले राधा पश्चात् कृष्ण या माधव कहना चाहिए, ऐसा वेदों में प्राचीन वेद-वेत्ताओं ने कहा है ॥१७८॥ क्योंकि जो विपर्यय (उलटा अर्थात् कृष्ण कह कर राधा का नामोच्चारण करते हैं और उस जगज्जननी राधिका की, जो भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों से अधिक प्रिय एवं उनकी प्रेममयी शक्ति है,

---

१ क. ०रं ज्योतिर्ब्र०।

ते पच्यन्ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भवन्ति स्त्रीपुत्रहीना रोगिणः शतजन्मसु ॥१८०॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम्। सा त्वं सती भगवती वैष्णवी च सनातनी ॥१८१॥
नारायणी विष्णुमाया मूलप्रकृतिरीश्वरी। मायया मां पृच्छसि त्वं सर्वज्ञा सर्वरूपिणी ॥१८२॥
स्त्रीजातिष्वधिदेवी च परा जातिस्मरा वरा। कथितं राधिकाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८३॥

श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधाख्या० सुयज्ञाख्या०
सुयज्ञगोलोकगमनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

श्रीकृष्णस्य स्थिते मन्त्रे चान्येषामीश्वरस्य वः। कथं जग्राह राधाया मन्त्रं वै वैष्णवो नृपः ॥१॥
किं विधानं च किं ध्यानं किं स्तोत्रं कवचं च किम्। कं मन्त्रं च ददौ राज्ञे तां पूजापद्धतिं वद ॥२॥

महेश्वर उवाच

हे विप्र कं भजामीति प्रश्नं कुर्वति राजनि। शीघ्रं प्राप्नोमि गोलोकं कस्याऽऽराधनतो मुने ॥३॥

निन्दा करते हैं, उन्हें चन्द्र-सूर्य के समय तक कालसूत्र नामक नरक में रहना पड़ता है और सौ जन्मों तक स्त्री-पुत्र से हीन एवं रोगी भी होना पड़ता है॥१७९-१८०॥ हे दुर्गे! इस प्रकार मैंने श्री राधिका जी का परमोत्तम आख्यान तुम्हें सुना दिया और तुम भी वही सती, भगवती, वैष्णवी, सनातनी, नारायणी, विष्णु की माया, मूल प्रकृति, ईश्वरी होकर माया से मुझसे पूछ रही हो क्योंकि तुम भी सब कुछ जानने वाली, समस्त का स्वरूप, स्त्री जाति की अधीश्वरी, श्रेष्ठा और जाति स्मरण रखने वाली देवी हो। इस भाँति मैंने राधिका जी का आख्यान कह दिया अब पुनः क्या सुनना चाहती हो॥१८१-१८३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी के संवाद में राधाख्यान एवं सुयज्ञाख्यान में सुयज्ञ का गोलोक-प्राप्ति-कथन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४॥

अध्याय ५५

राधा की पूजा, स्तोत्र आदि

पार्वती बोलीं—आपके और दूसरों के भी ईश्वर श्रीकृष्ण के मंत्र के रहते उस वैष्णव राजा ने कैसे राधा का मंत्र ग्रहण किया? तथा उसका विधान, ध्यान, स्तोत्र एवं कवच क्या है, उन्होंने राजा को कौन मन्त्र बताया? उस पूजापद्धति को बताने की कृपा कीजिये॥१-२॥

महेश्वर बोले—हे विप्र! मैं किसकी आराधना करूँ, तथा हे मने! किसकी सेवा से मुझे गोलोक की शीघ्र प्राप्ति होगी॥३॥ ऐसा उस महाराज के पूछने पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने कहा कि—भगवान् की सेवा

इत्युक्तवन्तं राजेन्द्रमुवाच ब्राह्मणोत्तमः। तत्सेवया च तल्लोकं प्राप्स्यसे बहुजन्मतः ॥४॥
तत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधां परात्पराम्। कृपामयीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोषि तत्पदम् ॥५॥
इत्युक्त्वा राधिकामन्त्रं ददौ तस्मै षडक्षरम्। ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥६॥
प्राणायामं भूतशुद्धिं मन्त्रन्यासं तथैव च। कराङ्गन्याससमेवं च ध्यानं सर्वसुदुर्लभम् ॥७॥
स्तोत्रं च कवचं तं च शिक्षयामास भक्तितः। राजा तेन क्रमेणैव जजाप परमं मनुम् ॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं मङ्गलानां च मङ्गलम्। कृष्णस्तां पूजयामास पुरा ध्यानेन येन च ॥९॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥१०॥
सुश्रोणीं सुनितम्बां च पक्वबिम्बाधरां वराम्। मुक्तापङ्क्तिप्रतिनिधिदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ॥११॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम् ॥१२॥
रत्नकेयूरवलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन विचित्रेण विराजिताम् ॥१३॥
सूर्यप्रभाप्रतिकृतिगण्डस्थलविराजिताम्। अमूल्यरत्नखचितग्रैवेयकविभूषिताम् ॥१४॥
सद्रत्नसारखचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलाम्। रत्नाङ्गुलीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम् ॥१५॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम्। रूपाधिष्ठातृदेवीं च मत्तवारणगामिनीम् ॥१६॥
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना ॥१७॥

करने से अनेक जन्मों में गोलोक की प्राप्ति होगी। अतः उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी राधा का भजन करो; क्योंकि उसी परात्पर (सर्वश्रेष्ठ) एवं कृपामयी के प्रसाद से तुम्हें शीघ्र उस स्थान की प्राप्ति हो जायगी ॥४-५॥ ऐसा कहकर (ब्राह्मण ने) उसे राधा जी का षडक्षर वाला 'ओं राधायै स्वाहा' मन्त्र, प्राणायाम, भूतशुद्धि, मन्त्र-न्यास, करन्यास, अंगन्यास, तथा सबके लिए अति दुर्लभ ध्यान, स्तोत्र एवं कवच की भी उन्हें शिक्षा दी। अनन्तर राजा ने उसी व्रत से उस परम मन्त्र का जप तथा ध्यान भी किया, जो सामवेदानुसार एवं समस्त मंगलों का मंगल था। पूर्वकाल में जिस ध्यान द्वारा भगवान् श्री कृष्ण ने उस राधा की पूजा की थी वह यह है— उनका श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूप-रंग है एवं करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति मुख, शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र, सुन्दर श्रोणी भाग, अति सुन्दर नितम्ब, पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ, स्वयं सबसे उत्तम, मोती की पंक्ति के समान दाँतों की मनोहर पंक्तियाँ तथा मन्दहास समेत प्रसन्नतापूर्ण मुख हैं। वे भक्तों पर अनुकम्पा करने वाली, अग्नि-विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित, रत्नों की मालाओं से विभूषित, रत्नों के केयूर (अंगद), रत्नों के मंजीर, रत्नों के नूपुर और रत्नों के विचित्र एवं युगल कुण्डलों से विभूषित तथा सूर्य की कान्ति के समान कान्तिपूर्ण गण्डस्थल (कपोल) से सुशोभित, अमूल्य रत्नों के हार से भूषित, उत्तम रत्नों के सार भाग से खचित किरीट-मुकुट से देदीप्यमान, रत्नों की अंगूठी आदि भूषण एवं पाशक (चेन या पासा आदि) भूषणों से सुशोभित हैं ॥६-१५॥ मालती की माला से विभूषित केश-पाश धारण करने वाली, रूप की अधिष्ठात्री और मतवाले हाथी की भाँति गमन करने वाली उन (राधा देवी) की अत्यन्त प्रिय गोपियाँ श्वेत चामरों से सेवा कर रही हैं। उनके भाल में कस्तूरी बिन्दी के साथ नीचे चन्दन की बिन्दी लगी है ॥१६-१७॥ सुन्दर सीमन्त

सिन्दूरबिन्दुना चारुसीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम् । नित्यं सुपूजितां भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥१८॥
कृष्णसौभाग्यसंयुक्तां कृष्णप्राणाधिकां वराम् । कृष्णप्राणाधिदेवीं च निर्गुणां च परात्पराम् ॥१९॥
महाविष्णुविधात्रीं च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् । कृष्णभक्तिप्रदां शान्तां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥२०॥
वैष्णवीं विष्णुमायां च कृष्णप्रेममयीं शुभाम् । रासमण्डलमध्यस्थां रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥२१॥
रासे रासेश्वरयुतां राधां रासेश्वरीं भजे । ॥२२॥
ध्यात्वा पुष्पं मूर्ध्नि दत्त्वा पुनर्ध्यायेज्जगत्प्रसूम् । दद्यात्पुष्पं पुनर्ध्यात्वा चोपचाराणि षोडश ॥२३॥
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं गन्धानुलेपनम् । धूपं दीपं सुपुष्पं च स्नानीयं रत्नभूषणम् ॥२४॥
नानाप्रकारनैवेद्यं ताम्बूलं वासितं जलम् । मधुपर्कं रत्नतल्पमुपचाराणि षोडश ॥२५॥
प्रत्येकं वेदमन्त्रेण दत्तं भक्त्या च भूभृता । मन्त्रांश्च श्रूयतां दुर्गे वेदोक्तान्सर्वसंमतान् ॥२६॥
रत्नसारविकारं च निर्मितं विश्वकर्मणा । वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम् ॥२७॥
अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च । वह्निशुद्धं निर्मलं च वसनं देवि गृह्यताम् ॥२८॥
सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतीर्थोदकं शुभम् । पादप्रक्षालनार्थं च राधे पाद्यं च गृह्यताम् ॥२९॥
दक्षिणावर्तशङ्खस्थं सदूर्वापुष्पचन्दनम् । पूतं युक्तं तीर्थतोये राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम् ॥३०॥

(माँग) में सिन्दूर की बिन्दी लगने के कारण उसके नीचे के भाग में समुज्ज्वल, परमात्मा श्रीकृष्ण द्वारा भक्तिपूर्वक नित्य सुपूजित, कृष्ण के सौभाग्य से युक्त, उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय, उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, निर्गुण और परात्पर (सर्वश्रेष्ठ), महाविष्णु की जननी, समस्त सम्पत्ति की प्रदायिनी, कृष्ण-भक्ति देने वाली, शान्तस्वरूप, मूलप्रकृति, ईश्वरी, वैष्णवी, विष्णु की माया, भगवान् कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति, शुभ, रासमण्डल के मध्य रत्नसिंहासन पर विराजमान, रास में रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ रहनेवाली रासेश्वरी श्रीराधा जी की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥१८-२२॥ इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त उस पुष्प को मस्तक पर रख कर पुनः जगदम्बा (श्रीराधा) का ध्यान करे और फूल चढ़ावे। पुनः ध्यान के पश्चात् सोलह उपचार—आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, लेपन, धूप, दीप, उत्तम पुष्प, स्नान का जल, रत्न के आभूषण, अनेक भाँति के नैवेद्य, सुवासित ताम्बूल जल, मधुपर्क, रत्नजड़ित शय्या समर्पित करे। इनमें से प्रत्येक को राजा ने वेदमंत्र से भक्तिपूर्वक अर्पित किया। हे दुर्गे! वेदोक्त एवं सर्वसम्मत उन मंत्रों को बता रहा हूँ, सुनो! ॥२३-२६॥ हे राधे! उत्तम रत्नों के सारभाग का विश्वकर्मा द्वारा सुरचित यह रमणीक एवं उत्तम सिंहासन इस पूजा में तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो॥२७॥ हे देवि! अमूल्य रत्नों से विभूषित, अमूल्य, सूक्ष्म, अग्नि की भाँति विशुद्ध तथा निर्मल (स्वच्छ) वस्त्र तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥२८॥ हे राधे! यह पाद्य (पैर धोने वाला जल) जो उत्तम रत्नों के सारभाग के बने पात्र में स्थित है, तथा समस्त तीर्थों का शुभ जल है, चरण धोने के लिए तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥२९॥ हे राधे! दक्षिणावर्त (दाहिनी ओर को घूमे हुए) शंख में दूर्वा, पुष्प और चन्दन समेत यह पवित्र तीर्थ के जल का अर्घ्य तुम्हें समर्पित कर रहा हूं, स्वीकार करो॥३०॥ हे राधे! पार्थिव द्रव्य

पार्थिवद्रव्यसंभूतमतीव सुरभीकृतम् । मङ्गलार्हं पवित्रं च राधे गन्धं गृहाण मे ॥३१॥
श्रीखण्डचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । सुगन्धयुक्तं देवेशि गृहयतामनुलेपनम् ॥३२॥
वृक्षनिर्याससंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम् । [1]अग्निखण्डशिखाजातं धूपं देवि गृहाण मे ॥३३॥
अन्धकारे भयहरममूल्यमणिशोभितम् । रत्नप्रदीपं शोभाढ्यं गृहाण परमेश्वरि ॥३४॥
पारिजातप्रसूनं च गन्धचन्दनचर्चितम् । अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि ॥३५॥
सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम् । विष्णुतैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम् ॥३६॥
अमूल्यरत्नखचितं केयूरवलयादिकम् । शश्वत्सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम ॥३७॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलं वै लड्डुकादिकम् । परमान्नं च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ॥३८॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सर्वभोगाधिकं स्वादु ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥३९॥
अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम् । मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि ॥४०॥
रत्नेन्द्रसारखचितं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । पुष्पचन्दनचर्चाढ्यं पर्यङ्कं देवि गृह्यताम् ॥४१॥
एवं संपूज्य देवीं तां दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम् । यत्नेन पूजयेद्देवीं नायिकाश्च व्रते व्रती ॥४२॥

से बनाया गया अत्यन्त सुगन्धित, मंगलमय और पवित्र यह मेरा दिया हुआ गन्ध ग्रहण करो ॥३१॥ हे देवेशि ! श्रीखण्ड के चूर्ण का बना हुआ यह अनुलेपन, जो कस्तूरी, कुंकुम युक्त होने के नाते, अति स्निग्ध और अति सुगन्धपूर्ण है, तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३२॥ हे देवि ! वृक्ष की गोंद और पार्थिव द्रव्यों से युक्त यह धूप, जो अग्नि-शिखा से उत्पन्न है, तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ ॥३३॥ हे परमेश्वरि ! अन्धकार में उत्पन्न भय का नाशक, अमूल्य मणियों से सुशोभित और शोभाशाली यह रत्नप्रदीप तुम्हें समर्पित है ॥३४॥ हे परमेश्वरि ! गन्ध, चन्दन-चर्चित यह पारिजात (मन्दार), पुष्प, जो अत्यन्त सुशोभित और सुन्दर है, अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३५॥ हे देवि ! स्नान के लिए सुगन्धित आंवले का चूर्ण मिश्रित जल जो अति स्निग्ध, अति मनोहर और विष्णुतैल से युक्त है, तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३६॥ हे राधे ! अमूल्य रत्नों से खचित केयूर (बहूंटा), कंकण आदि मेरे द्वारा अर्पित भूषण, जो निरन्तर सौन्दर्यपूर्ण रहता है, ग्रहण करो ॥३७॥ हे देवि ! देश-काल के अनुसार उपलब्ध पके फल तथा लड्डू आदि मिष्टान्न समेत यह परमान्न नैवेद्य तुम्हें समर्पित है, ग्रहण करो ॥३८॥ हे देवि ! कपूर आदि से सुवासित, समस्त भोगों से अधिक स्वादुपूर्ण, उत्तम और सुन्दर ताम्बूल ग्रहण करो ॥३९॥ हे परमेश्वरि ! रत्नों के पात्रों में स्थापित यह अतिस्वादिष्ठ भोजन, जो अत्यन्त मनोहर है, तुम्हें भक्ति-पूर्वक मैं समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥४०॥ हे देवि ! उत्तम रत्नों के सार भाग से खचित, अग्नि-विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित और पुष्पों एवं चन्दनों से अतिचर्चित (उत्तम) पलंग तुम्हें समर्पित है, ग्रहण करो ॥४१॥ इस भाँति यत्न से सविधान देवी की पूजा करने के अनन्तर व्रती को व्रत में तीन पुष्पांजलि देनी चाहिए तथा हे प्रिये ! उनकी अतिप्रिय परिचारिका नायिकाओं की भी, जो पूर्वादि दिशाओं के

---

१ क. ज्वलदग्निशि° ।

प्रागादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्ततः प्रिये । भक्त्या पञ्चोपचारेण सुप्रियाः परिचारिकाः ॥४३॥
मालावतीं पूर्वकोणे वह्निकोणे च माधवीम् । दक्षिणे रत्नमालां च सुशीलां नैर्ऋते सतीम् ॥४४॥
पश्चिमे वै शशिकलां पारिजातां च मारुते । पद्मावतीमुत्तरे चाथैशान्यां सुन्दरीं तथा ॥४५॥
यूथिकामालतीपद्ममाला दद्याद्व्रते व्रती । परीहारं च कुरुते सामवेदोक्तमेव च ॥४६॥
त्वं देवि जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा ॥४७॥
कृष्णप्रेमनयी शक्तिः कृष्णे सौभाग्यरूपिणी । कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे ॥४८॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम । पूजिताऽसि मया सा च या श्रीकृष्णेन पूजिता ॥४९॥
कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता । रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने ॥५०॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसीकानने तुला[1] । चम्पावती कृष्णसङ्गे क्रीडा चम्पकानने ॥५१॥
[2]चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृङ्गे सतीति च । विरजादर्पहन्त्री च विरजातटकानने ॥५२॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे । भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या वै काम्यके वने ॥५३॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि । क्षीरोदे सिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया ॥५४॥

क्रम से स्थित रहती हैं, दक्षिणावर्त से भक्तिपूर्वक पांचों उपचारों द्वारा पूजा आरम्भ करनी चाहिए॥४२-४३॥ पूर्वकोण में मालावती, अग्निकोण में माधवी, दक्षिण में रत्नमाला, नैर्ऋत में सती सुशीला, पश्चिम में शशिकला, वायुकोण में पारिजाता, उत्तर में पद्मावती और ईशान में सुन्दरी की पूजा करनी चाहिए॥४४-४५॥ व्रत में जूही, मालती और कमल की मालाएँ अर्पित कर व्रती सामवेदानुसार परिहार नामक स्तुति करे॥४६॥ हे देवि! तुम जगत् की माता, भगवान् विष्णु की सनातनी माया, भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, उनके प्राणों से अधिक प्रिय, शुभमूर्ति, भगवान् कृष्ण की प्रेममयी एवं मूर्तिमती शक्ति, कृष्ण में सौभाग्य रूप, उनकी भक्ति प्रदान करने वाली और मंगलदायिनी हो, अतः हे राधे! तुम्हें नमस्कार है॥४७-४८॥ आज हमारा जन्म सफल हो गया और जीवन सार्थक हुआ क्योंकि मैंने उसकी प्रार्थना की है, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना आराध्य बनाकर पूजन किया है॥४९॥ जो राधिका जी समस्त सौभाग्य लिये भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर बिहार करती हैं, वही रास में रासेश्वरी, वृन्दावन नामक वन में वृन्दा, गोलोक में कृष्ण की परम प्रिया, तुलसी वन में चम्पावती, चम्पक वन में कृष्ण के साथ उनकी क्रीड़ा मूर्ति, चन्द्रवन में चन्द्रावली, सौ शिखरवाले पर्वत पर सती, विरजा (नदी) के तट वाले जंगल में विरजा (सखी) के दर्प (अभिमान) का नाश करने वाली, पद्मवन में पद्मावती, कृष्ण सरोवर (तालाब) में कृष्णा, कुञ्जकुटीर में भद्रा, काम्यक वन में काम्या, वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, नारायण के हृदय में वाणी, क्षीर सागर में सिन्धुकन्या, मनुष्यों के लोक में हरिप्रिया लक्ष्मी हैं॥५०-५४॥ तथा समस्त स्वर्ग में देवों के दुःख विनाश करने वाली स्वर्ग-

---

१ ख. तु या। २ क. चन्द्रावती।

सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी । सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शंकरवक्षसि ॥५५॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि । कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रभोः ॥५६॥
कलया तुलसी त्वं च गङ्गा भुवनपावनी । लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः ॥५७॥
कलाकलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः । अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया ॥५८॥
देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कलाकलया शुभे । कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते ॥५९॥
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत् । पुरा कृतं स्तोत्रमेतद्भक्तिदास्यप्रदं शुभम् ॥६०॥
एवं नित्यं पूजयेद्यो विष्णुतुल्यः स भारते । जीवन्मुक्तश्च पूतश्च गोलोकं याति निश्चितम् ॥६१॥
कार्तिके पूर्णिमायां च राधां यः पूजयेच्छिवे । एवं क्रमेण प्रत्यब्दं राजसूयफलं लभेत् ॥६२॥
परमैश्वर्ययुक्तः स्यादिह लोके स पुण्यवान् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम् ॥६३॥
आदावेवं क्रमेणैव रासे वृन्दावने वने । स्तुता सा पूजिता राधा श्रीकृष्णेन पुरा सती ॥६४॥
संपूजिता द्वितीये च धात्रा त्वेवं क्रमेण च । त्वद्वरेण च संप्राप्य विधाता वेदमातरम् ॥६५॥
नारायणो महालक्ष्मीं प्राप संपूज्य भारतीम् । गङ्गां च तुलसीं चैव परां भुवनपावनीम् ॥६६॥
विष्णुः क्षीरोदशायी च प्राप सिन्धुसुतां तथा । मृतायां दक्षकन्यायां मया कृष्णाज्ञया पुरा ॥६७॥

लक्ष्मी, शंकरजी के वक्षःस्थल पर (विहार करने वाली) भगवान् विष्णु की सनातनी माया दुर्गा और ब्रह्मा के वक्षः-स्थल पर बिहरने वाली अपनी कला से वेदमाता सावित्री हैं। तुम्हीं अंश द्वारा भगवान् नरनारायण की धर्मपत्नी हो। ॥५५-५६॥ अपनी कला से तुम तुलसी और लोकपावनी गंगा, लोमकूपों से उत्पन्न होने वाली गोपियाँ, कलांश रूप रोहिणी, रति, तथा कला-कलांश रूप शतरूपा, शची, (इन्द्राणी), दिति (दैत्यमाता), देवों की माता अदिति और हरिप्रिया भी तुम्हारी कलांशरूपा हैं॥५७-५८॥ हे शुभे! तुम्हारी कला की कलामात्र देवियाँ और मुनियों की पत्नियाँ हैं। अतः हे कृष्णपूजिते! मुझे भगवान् कृष्ण की भक्ति देकर उनका दास (पार्षद) बनाओ॥५९॥ इस प्रकार परिहारपूर्वक स्तुति करने के अनन्तर उनका कवच पाठ करे। भक्ति और दास्य प्रदान करने वाला यह शुभ स्तोत्र प्राचीन काल में ही बनाया गया था॥६०॥ इस भाँति भारत में जो नित्य पूजन करते हैं वे भगवान् विष्णु के समान होकर जीवन्मुक्त और पवित्र हो जाते हैं तथा निश्चित गोलोक में निवास करते हैं॥६१॥ हे शिवे! कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन जो राधा जी की अर्चना करते हैं और प्रति वर्ष करते रहते हैं वे सदैव राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं॥६२॥ इस लोक में समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर वह पुण्यात्मा समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में चला जाता है॥६३॥ पूर्वकाल में पतिव्रता राधा सर्वप्रथम वृन्दावन के रासमण्डल में इसी क्रम द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण से स्तुत और पूजित हुई थीं॥६४॥ दूसरे ब्रह्मा ने भी इसी क्रम से उनकी अर्चना की थी, जिससे तुम्हारे वरदान द्वारा वेदमाता सावित्री उन्हें प्राप्त हुई थी॥६५॥ नारायण ने भी अर्चना करके महालक्ष्मी, सरस्वती, लोकपावनी गंगा और तुलसी को प्राप्त किया था॥६६॥ क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु ने सिन्धु-सुता (लक्ष्मी) प्राप्त की और पहले समय में दक्षकन्या (सती) के प्राण त्याग करने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा

त्वमेव दुर्गा संप्राप्ता पूजिता पुष्करे च सा । अदितिं कश्यपः प्राप चन्द्रः संप्राप रोहिणीम् ॥६८॥
कामो रतिं च संप्राप धर्मो मूर्तिं पतिव्रताम् । देवाश्च मुनयश्चैव यां संपूज्य पतिव्रताम् ॥६९॥
संप्रापुर्यद्वरेणैव धर्मकामार्थमोक्षकम् । एवं पूजाविधानं च कथितं च स्तवं शृणु ॥७०॥

महेश्वर उवाच

एकदा मानिनी राधा बभूवागोचरा प्रभोः । संसक्तस्य तुलस्यां च गोप्यां च तुलसीवने ॥७१॥
सा संहृत्य स्वमूर्तीश्च कलाः सर्वाश्च लीलया । सर्वे बभूवुर्देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७२॥
भ्रष्टैश्वर्याश्च निःश्रीका भार्याहीना ह्यपद्रुताः । ते च सर्वे समालोच्य श्रीकृष्णं शरणं ययुः ॥७३॥
तेषां स्तोत्रेण संतुष्टः स्नात्वा संपूज्य तां शुचिः । तुष्टाव परमात्मा स सर्वेषां राधिकां सतीम् ॥७४॥

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेव प्रियोऽहं ते प्रमोदश्चैव ते मयि । सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनं ते वरानने ॥७५॥
हे कृष्ण त्वं मम प्राणा जीवात्मेति च संततम् । यद्ब्रूहि नित्यं प्रेम्णा त्वं सांप्रतं तत्कुतो गतम् ॥७६॥
तस्मात्सर्वमलीकं ते वचनं जगदम्बिके । क्षुरधारं च हृदयं स्त्रीजातीनां च सर्वतः ॥७७॥
अस्माकं वचनं सत्यं यद्ब्रवीमि च तद्ध्रुवम् । पञ्चप्राणाधिदेवी त्वं राधा प्राणाधिकेति मे ॥७८॥

शिरोधार्य कर मैंने पुष्कर क्षेत्र में श्री राधिका जी की पूजा करके तुम दुर्गा को प्राप्त किया। उसी प्रकार कश्यप को अदिति, चन्द्रमा को रोहिणी, काम को रति और धर्म को पतिव्रता मूर्ति प्राप्त हुई तथा देवगण एवं मुनिवृन्दों ने उस पतिव्रता (राधा) की अर्चना करके उनके वरदान द्वारा धर्म अर्थ काम और मोक्षरूप चारों पदार्थों की प्राप्ति की। इस प्रकार मैंने पूजा-विधान तुम्हें सुना दिया, अब स्तोत्र सुना रहा हूँ, सुनो! ॥६७-७०॥

महेश्वर बोले—एक बार मानिनी राधा ने भगवान् श्रीकृष्ण को तुलसी वन में तुलसी गोपी के साथ विहार-मग्न देख कर उनसे अपने को छिपा लिया और अपनी कला से उत्पन्न होने वाली सभी स्त्रियों को लीला की भाँति अपने में अन्तर्हित कर लिया, जिससे ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि सभी देवगण ऐश्वर्य, श्री और स्त्री से हीन होने के कारण अति संतप्त होने लगे। अनन्तर भली भाँति विचार कर भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में पहुँचे। उन लोगों की स्तुति से सन्तुष्ट होकर परमात्मा ने स्नान आदि से पवित्र होकर उन सभी लोगों के हितार्थ पतिव्रता श्रीराधा जी की पूजा और स्तुति की ॥७१-७४॥

श्रीकृष्ण बोले—हे वरानने! यद्यपि मैं तुम्हारा प्रिय हूँ और मुझमें तुम्हारा प्रेम भी रहता है, किन्तु तुम्हारी कपट की बातें आज सब प्रकट हो गयीं—तुम नित्य प्रेममग्न हो कर कहती थीं कि हे कृष्ण! तुम मेरे प्राण हो, निरन्तर जीवात्मा हो! यह सभी बातें सम्प्रति इतने शीघ्र कहाँ चली गयीं ॥७५-७६॥ हे जगदम्बिके! इससे तुम्हारी सभी बातें झूठी हैं क्योंकि स्त्री जाति का हृदय सब ओर से क्षुर (स्तुरे) के धार के समान तीव्र होता है ॥७७॥ और मैं जो कह रहा हूँ, वह ध्रुव सत्य है। तुम हमारे पाँचों प्राणों की अधीश्वरी और प्राणों से अधिक प्रिय राधा हो।

शक्तो न रक्षितुं त्वां च यान्ति प्राणास्त्वया विना । विनाऽधिष्ठातृदेवी च को वा कुत्र च जीवति ॥७९॥
महाविष्णोश्च माता त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी । सगुणा त्वं च कलया निर्गुणा स्वयमेव तु ॥८०॥
ज्योतीरूपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । भक्तानां रुचिवैचित्र्यान्नानामूर्तीश्च बिभ्रती ॥८१॥
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च गिरां प्रसूः । पुण्यक्षेत्रे भारते च सती त्वं पार्वती तथा ॥८२॥
तुलसी पुण्यरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । ब्रह्मलोके च सावित्री कलया त्वं वसुंधरा ॥८३॥
गोलोके राधिका त्वं च सर्वगोपालकेश्वरी । त्वया विनाऽहं निर्जीवो ह्यशक्तः सर्वकर्मसु ॥८४॥
शिवः शक्तस्त्वया शक्त्या शवाकारस्त्वया विना । वेदकर्ता स्वयं ब्रह्मा वेदमात्रा त्वया सह ॥८५॥
नारायणस्त्वया लक्ष्म्या जगत्पाता जगत्पतिः । फलं ददाति यज्ञश्च त्वया दक्षिणया सह ॥८६॥
बिभर्ति सृष्टिं शेषश्च त्वां कृत्वा मस्तके भुवम् । बिभर्ति गङ्गारूपां त्वां मूर्ध्नि गङ्गाधरः शिवः ॥८७॥
शक्तिमच्च जगत्सर्वं शवरूपं त्वया विना । वक्ता सर्वस्त्वया वाण्या मूतो मूकस्त्वया विना ॥८८॥
यथा मृदा घटं कर्तुं कुलालः शक्तिमान्सदा । सृष्टिं स्रष्टुं तथाऽहं च प्रकृत्या च त्वया सह ॥८९॥
त्वया विना जडश्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान् । सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं त्वमागच्छ ममान्तिकम् ॥९०॥
वह्नौ त्वं दाहिका शक्तिर्नाग्निः शक्तस्त्वया विना । शोभास्वरूपा चन्द्रे त्वं त्वां विना न स सुन्दरः ॥९१॥

मैं तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ नहीं हूँ, अतः तुम्हारे बिना मेरे ये प्राण अब जा रहे हैं क्योंकि अधिष्ठात्री देवी बिना कौन कहाँ जीवित रह सकता है ॥७८-७९॥ तुम महाविष्णु की माता ईश्वरी मूल प्रकृति, कला से सगुणा और स्वयं निर्गुणा हो ॥८०॥ तुम ज्योतिरूप, निराकार, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाली और भक्तों के विभिन्न रुचि के कारण अनेक मूर्ति धारण करने वाली तथा वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, पुण्य प्रदेश भारत में सज्जनों की जननी भारती, तुम सती एवं पार्वती हो ॥८१-८२॥ तुम पुण्य स्वरूपा तुलसी, लोकपावनी गंगा, ब्रह्मलोक में सावित्री और कला द्वारा वसुन्धरा (पृथ्वी) हो ॥८३॥ गोलोक में तुम्हीं समस्त गोपालों की ईश्वरी राधा हो, तुम्हारे बिना मैं निर्जीव सा हो गया हूँ, सभी कर्मों में असमर्थ हूँ ॥८४॥ शिव जी तुम्हीं शक्ति को प्राप्त कर शक्तिमान् हैं और तुम्हारे बिना शवतुल्य हैं। तुम वेदमाता (सावित्री) के साथ रहने पर ब्रह्मा स्वयं वेदकर्ता कहलाते हैं, तुम लक्ष्मी के साथ नारायण जगत् के रक्षक और अधीश्वर होते हैं, तुम्हीं दक्षिणा के साथ यज्ञ फल प्रदान करता है ॥८५-८६॥ शेष पृथ्वी रूप तुम्हें मस्तक पर रखकर सम्पूर्ण सृष्टि धारण करते हैं, गंगारूप तुम्हें धारण कर शिव गंगाधर कहलाते हैं ॥८७॥ तुमसे ही सारा संसार शक्तिमान् है और तुम्हारे बिना शव रूप। तुम वाणी (सरस्वती) के योगदान से सभी लोग वक्ता हैं और तुम्हारे बिना सूत भी मूक हो जाता है ॥८८॥ जिस प्रकार कुम्हार घड़े बनाने में सदा शक्तिशाली रहता है, उसी भाँति मैं भी तुम प्रकृति के साथ सृष्टि की रचना करने में समर्थ हूँ ॥८९॥ किन्तु तुम्हारे बिना मैं शक्तिमान् न रहकर सर्वत्र जड़ हो गया हूँ क्योंकि तुम सम्पूर्ण शक्ति स्वरूपा हो, अतः मेरे समीप शीघ्र आओ ॥९०॥ अग्नि की दाहिका (जलाने वाली) शक्ति तुम्हीं हो, तुम्हारे बिना वह अशक्त रहता है। चन्द्रमा में शोभास्वरूप तुम्हीं हो, तुम्हारे बिना वह सुन्दर नहीं हो सकता है ॥९१॥ तुम

प्रभारूपा हि सूर्ये त्वं त्वां विना न सभानुमान् । न कामः कामिनीबन्धुस्त्वया रत्या विना प्रिये ॥९२॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा तां संप्राप जगत्प्रभुः । देवा बभूवुः सश्रीकाः सभार्याः शक्तिसंयुताः ॥९३॥
सस्त्रीकं च जगत्सर्वं सनभूच्छैलकन्यके । गोपीपूर्णश्च गोलोको ह्यभवत्तत्प्रसादतः ॥९४॥
राजा जगाम गोलोकमिति स्तुत्वा हरिप्रियाम् । श्रीकृष्णेन कृतं स्तोत्रं राधाया यः पठेन्नरः ॥९५॥
कृष्णभक्तिं च तद्दास्यं संप्राप्नोति न संशयः । स्त्रीविच्छेदे यः शृणोति मासमेकमिदं शुचिः ॥९६॥
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । भार्याहीनो भाग्यहीनो वर्षमेकं शृणोति यः ॥९७॥
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । पुरा मया च त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेन पार्वति ॥९८॥
मृतायां दक्षकन्यायामाज्ञया परमात्मनः । स्तोत्रेणानेन संप्राप्ता सावित्री ब्रह्मणा पुरा ॥९९॥
पुरा दुर्वाससः शापान्निःश्रीके देवतागणे । स्तोत्रेणानेन देवैस्तैः संप्राप्ता श्रीः सुदुर्लभा ॥१००॥
शृणोति वर्षमेकं च पुत्रार्थी लभते सुतम् । महाव्याधी रोगमुक्तो भवेत्स्तोत्रप्रसादतः ॥१०१॥
कार्तिके पूर्णिमायां तु तां संपूज्य पठेत्तु यः । अचलां श्रियमाप्नोति राजसूयफलं लभेत् ॥१०२॥
नारी शृणोति चेत्स्तोत्रं स्वामिसौभाग्यसंयुता । भक्त्या शृणोति यः स्तोत्रं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥१०३॥

सूर्य में प्रभा रूप हो, तुम्हारे बिना वह भानु (किरण) युक्त नहीं हो सकता है। और हे प्रिये! तुम रति बिना कामदेव भी कामिनियों का बन्धु नहीं हो सकता है॥९२॥ इस प्रकार स्तुति करने पर जगत् के प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण को राधा मिल गयीं और सब देवगण श्री (ऐश्वर्य), स्त्री और शक्ति आदि से सम्पन्न हो गये॥९३॥ हे शैलकन्ये! उनकी प्रसन्नता से सारा संसार स्त्री-सम्पन्न और गोलोक गोपियों से भर गया॥९४॥ उसी हरिप्रिया श्री राधा जी की स्तुति करके राजा ने गोलोक की प्राप्ति की। इस प्रकार श्री कृष्ण द्वारा किये गये श्रीराधा जी के स्तोत्र का जो मनुष्य पाठ करेगा, उसे भगवान् कृष्ण की भक्ति और उनकी दासता प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं। स्त्री के मृतक होने पर जो पवित्र होकर एक मास तक इसे श्रवण करता है, वह अचिरकाल में ही सुशीला, सुन्दरी और पतिव्रता स्त्री प्राप्त करता है। भाग्यहीन और स्त्रीहीन पुरुष यदि वर्षपर्यन्त इसका श्रवण करता है, तो उसे सुशीला, सुन्दरी और पतिव्रता स्त्री शीघ्र प्राप्त होती है। हे पार्वति! पहले समय में दक्षकन्या (सती) के मरणानन्तर मैंने परमात्मा की आज्ञा शिरोधार्य कर इसी स्तोत्र द्वारा तुम्हें प्राप्त किया था। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने भी इसी स्तोत्र द्वारा सावित्री की प्राप्ति की थी और पहले समय में दुर्वासा के शाप के कारण श्रीहीन होने पर देवों ने इसी स्तोत्र द्वारा अति दुर्लभ श्री (लक्ष्मी) प्राप्त की थी॥९५-१००॥ पुत्र की कामना से एक वर्ष तक इसे सुनने पर पुत्र की प्राप्ति होती है तथा इस स्तोत्र के प्रसाद से महारोगी प्राणी रोगमुक्त हो जाता है॥१०१॥ कार्तिक मास की पूर्णिमा में श्री राधा जी की पूजा के अनन्तर इसका पाठ करने से अचल लक्ष्मी और राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है॥१०२॥ यदि स्त्री इसका श्रवण करती है तो स्वामी (पति) के सौभाग्य से युक्त होती है। भक्तिपूर्वक जो इसे सुनता है, वह निश्चित बन्धनमुक्त हो जाता है॥१०३॥ जो भक्तिपूर्वक श्री राधा

नित्यं पठति यो भक्त्या राधां संपूज्य भक्तितः । स प्रयाति च गोलोकं निर्मुक्तो भवबन्धनात् ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधिकोपा०
राधापूजास्तोत्रादिकथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

पूजाविधानं स्तोत्रं च श्रुतमत्यद्भुतं मया । अधुना कवचं ब्रूहि श्रोष्यामि त्वत्प्रसादतः ॥१॥

महेश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे दुर्गे कवचं परमाद्भुतम् । पुरा मह्यं निगदितं गोलोके परमात्मना ॥२॥
अतिगुह्यं परं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा संप्राप्तो वेदमातरम् ॥३॥
यद्धृत्वाऽहं तव स्वामी सर्वमाता सुरेश्वरी । नारायणश्च यद्धृत्वा महालक्ष्मीमवाप सः ॥४॥
यद्धृत्वा परमात्मा च निर्गुणः प्रकृतेः परः । बभूव शक्तिमान्कृष्णः सृष्टिं कर्तुं पुरा विभुः ॥५॥
विष्णुः पाता च यद्धृत्वा संप्राप्तः सिन्धुकन्यकाम् । शेषो बिभर्ति ब्रह्माण्डं मूर्ध्नि सर्षपवद्यतः ॥६॥

जी की पूजा करने के उपरान्त इसका नित्य पाठ करता है, वह संसार (जन्ममरण) रूप बन्धन से मुक्त होकर गोलोक जाता है ॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी-संवाद के श्रीराधिकोपाख्यान में राधा की पूजा, स्तोत्र आदि कथन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

अध्याय ५६

राधा के मंत्र आदि का निरूपण

श्री पार्वती बोलीं—मैंने अति अद्भुत पूजा विधान और स्तोत्र तो सुन लिया, किन्तु तुम्हारे प्रसाद से सम्प्रति उनका कवच भी सुनना चाहती हूँ, अतः उसे कहने की कृपा करें ॥१॥

श्री महेश्वर बोले—हे दुर्गे! पूर्व समय गोलोक में परमात्मा श्रीकृष्ण ने जिसे मुझे बताया था, वह परम अद्भुत कवच तुम्हें मैं बता रहा हूँ, सुनो! ॥२॥ जो अति गुप्त, परमतत्त्व रूप तथा समस्त मन्त्रों का समूह स्वरूप है और जिसके धारण एवं पाठ करने से ब्रह्मा ने वेदमाता सावित्री को प्राप्त किया ॥३॥ जिसे धारण कर मैं सबकी जननी और देवों की अधीश्वरी देवी तुम्हारा पति हूँ। जिसे धारण कर नारायण ने महालक्ष्मी को प्राप्ति की ॥४॥ जिसे धारण कर परमात्मा श्रीकृष्ण, जो निर्गुण प्रकृति से परे और विभु (व्यापक) हैं, सृष्टि करने के लिए शक्तिमान् हुए ॥५॥ जिसे धारण कर विष्णु विश्वपालक हुए और उन्होंने सिन्धु-पुत्री लक्ष्मी को प्राप्त किया। जिसके कारण शेष समस्त ब्रह्माण्ड को अपने मस्तक पर राई के समान रखते हैं तथा महाविराट् जिसे धारण

यद्धृत्वा पठनादग्निर्जगत्पूतं करोति च। यद्धृत्वा याति वातोऽयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥११॥
यद्धृत्वा च स्वतन्त्रो हि मृत्युश्चरति जन्तुषु। त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां चकार च वसुन्धराम्॥१२॥
जामदग्न्यश्च रामश्च पठनाद्धारणात्प्रभुः। ययौ समुद्रं यद्धृत्वा राजसूयं चकार सः।
पपौ समुद्रं यद्धृत्वा पठनात्कुम्भसंभवः ॥१३॥
सनत्कुमारो भगवान्यद्धृत्वा ज्ञानिनां गुरुः। जीवन्मुक्तौ च सिद्धौ च नरनारायणावृषी ॥१४॥
यद्धृत्वा पठनात्सिद्धो वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः। सिद्धेशः कपिलो यस्माद्यस्माद्दक्षः प्रजापतिः ॥१५॥
यस्माद्भृगुश्च मां द्वेष्टि कर्मःशेषं बिभर्ति च। सर्वाधारो यतो वायुर्वरुणः पवनो यतः ॥१६॥
ईशानो दिक्पतिश्चैव यमः शास्ता यतः शिवे। कालः कालाग्निरुद्रश्च संहर्ता जगतां यतः ॥१७॥
यद्धृत्वा गौतमः सिद्धः कश्यपश्च प्रजापतिः। वसुदेवसुतां प्राप चैकांशेन तु तत्कलाम् ॥१८॥
पुरा स्वजायाविच्छेदे दुर्वासा मुनिपुंगवः। संप्राप रामः सीतां च रावणेन हृतां पुरा ॥१९॥
पुरा नलश्च संप्राप दयमन्तीं यतःसतीम्। शङ्खचूडो महावीरो दैत्यानामीश्वरो यतः ॥२०॥
वृषो वहति मां दुर्गे यतो हि गरुडो हरिम्। एवं संप्राप्य संसिद्धिं सिद्धाश्च मुनयः सुराः ॥२१॥
यद्धृत्वा च महालक्ष्मीः प्रदात्री सर्वसंपदाम्। सरस्वती सतां श्रेष्ठा यतः क्रीडावती रतिः ॥२२॥
सावित्री वेदमाता च यतः सिद्धिमवाप्नुयात्। सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मीर्यतो विष्णुमवाप सा ॥२३॥

लोकों को पवित्र करते हैं॥११॥ जिसे धारण कर मृत्यु जीवों में स्वतन्त्र विचरती है। जमदग्नि के पुत्र परशु-रामजी ने जिसके धारण से समर्थ होकर सम्पूर्ण पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियरहित कर दिया था। जिसे धारण कर कुम्भ-पुत्र अगस्त्य ने समुद्र का पान कर लिया था। जिसके कारण सनत्कुमार भगवान् ज्ञानियों के गुरु हुए तथा नर-नारायण ऋषि जीवन्मुक्त और सिद्ध हो गये॥१२-१४॥ जिसके धारण और पाठ से ब्रह्मा के सुपुत्र वशिष्ठ सिद्ध हो गये तथा जिसके बल से कपिल सिद्धेश हुए, दक्ष प्रजापति और भृगु मुझसे द्वेष रखते हैं, कच्छप शेष को धारण करता है और वायु एवं वरुण समस्त के आधार हुए हैं॥१५-१६॥ हे शिवे! जिसके बल से ईशान (शिव), दिक्पाल और यम शासन करते हैं, काल एवं कालाग्नि रुद्र जगत् का संहार करते हैं, जिसके धारण करने से गौतम सिद्ध हुए कश्यप प्रजापति हुए। पहले समय में मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने अपनी स्त्री के मरणानन्तर वसुदेव जी की कन्या से विवाह किया था, जो राधा के कला अंश से उत्पन्न हुई थी। और पहले समय में राम ने जानकी जी को प्राप्त किया था, जिसे रावण हर ले गया था॥१७-१९॥ जिसके कारण पहले समय में नल को सती दमयन्ती प्राप्त हुई थी और महाबलवान् शंखचूड़ दैत्यों का अधीश्वर हुआ॥२०॥ हे दुर्गे! जिसके बल से बैल हमारा वाहन हुआ और गरुड़ भगवान् का और पूर्वकाल में मुनिवृन्द जिसके बल से संसिद्धि प्राप्त कर सिद्ध हो गये॥२१॥ जिसे धारण कर महालक्ष्मी समस्त सम्पत्ति प्रदान करती हैं, सरस्वती सज्जनों में श्रेष्ठ हो गयीं, रति क्रीड़ावती हुई और जिसके कारण वेदमाता सावित्री को सिद्धि प्राप्त हो गयी। मर्त्यलोक की लक्ष्मी सिन्धु-कन्या को जिसके बल से विष्णु (पति) रूप में प्राप्त हुए॥२२-२३॥ जिसे धारण करने से तुलसी पवित्र हो गयीं, गंगा लोकपावनी

यद्धृत्वा तुलसी पूता गङ्गा भुवनपावनी। यद्धृत्वा सर्वसस्याढ्या सर्वाधारा वसुंधरा ॥२४॥
यद्धृत्वा मनसा देवी सिद्धा वै विश्वपूजिता। यद्धृत्वा देवमाता च विष्णुं पुत्रमवाप सा ॥२५॥
पतिव्रता च यद्धृत्वा लोपामुद्राऽप्यरुन्धती। लेभे च कपिलं पुत्रं देवहूती यतः सती ॥२६॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ प्राप च तत्प्रसूः। त्वन्माता चापि संप्राप[1] त्वां देवीं गिरिजां यतः ॥२७॥
एवं सर्वे सिद्धगणाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः। श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥२८॥
ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री देवी[2] रासेश्वरी स्वयम्। श्रीकृष्णभक्तिसंप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥२९॥
शिष्याय कृष्णभक्ताय ब्राह्मणाय प्रकाशयेत्। शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥३०॥
राज्यं देयं शिरो देयं न देयं कवचं प्रिये। कण्ठे धृतमिदं भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥३१॥
मया दृष्टं च गोलोके ब्रह्मणा विष्णुना पुरा। ॐ राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३२॥
कृष्णेनोपासितो मन्त्रः कल्पवृक्षः शिरोऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं रधिकां ङेन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३३॥
कपालं नेत्रयुग्मं च श्रोत्रयुग्मं सदाऽवतु। अं ऐं ह्रीं श्रीं राधिकायै वह्निजायान्तमेव च ॥३४॥
मस्तकं केशसंघांश्च मन्त्रराजः सदाऽवतु। ओं रां राधां चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३५॥
सर्वसिद्धिप्रदः पातु कपोलं नासिकां मुखम्। क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियां ङेन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम् ॥३६॥
ओं रां रासेश्वरीं ङेन्तं स्कन्धं पातु नमोऽन्तकम्। ओं रां रासविलासिन्यै स्वाहा[3] पृष्ठं सदाऽवतु ॥३७॥

बनी, वसुन्धरा समस्त सस्य (फसलों) से परिपूर्ण और सभी का आधार हुई ॥२४॥ जिसे धारण कर मनसा देवी सिद्ध होकर विश्वपूजित हुई, देवमाता (अदिति) को विष्णु पुत्र रूप में प्राप्त हुए ॥२५॥ लोपामुद्रा और अरुन्धती पतिव्रता हुईं तथा सती देवहूति को कपिल पुत्र रूप में प्राप्त हुए ॥२६॥ शतरूपा को प्रियव्रत एवं उत्तानपाद पुत्र मिले और जिसके नाते तुम्हारी माता मेना ने तुम गिरिजा देवी को प्राप्त किया ॥२७॥ इस भाँति सभी सिद्धगणों ने समस्त ऐश्वर्य प्राप्त किये हैं। इस जगन्मंगल (नामक) कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, स्वयं रासेश्वरी (राधा) देवी और श्रीकृष्ण की भक्ति की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग है ॥२८-२९॥ भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त शिष्य एवं ब्राह्मण से ही इसे प्रकट करना चाहिए क्योंकि किसी दूसरे के शिष्य एवं शठ को बताने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥३०॥ हे प्रिये! राज्य दे सकते हैं शिर भी दे सकते हैं, किन्तु यह कवच कभी नहीं देना चाहिए। क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण इसे भक्तिपूर्वक अपने कण्ठ में धारण करते हैं जिसे ब्रह्मा विष्णु के साथ मैंने गोलोक में (एक बार) पहले समय देखा था। 'ओं राधायै स्वाहा' यह भगवान् कृष्ण द्वारा उपासित कल्पवृक्ष तुल्य मन्त्र (मेरे) शिर की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा' यह मन्त्र मेरे कपाल, दोनों नेत्रों तथा दोनों कानों की सदा रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा' यह मन्त्रराज मस्तक और केशसमूह की सदा रक्षा करे। 'ओं रां राधायै स्वाहा' यह समस्त सिद्धिदायक मंत्र कपोल, नासिका और मुख की रक्षा करे। 'क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियायै नमः' कण्ठ की रक्षा करे ॥३१-३६॥ 'ओं रां रासेश्वर्यै नमः' स्कन्ध की रक्षा करे, 'ओं रां रासविलासिन्यै स्वाहा' सदा पीठ की रक्षा करे ॥३७॥

१क. त्वामेव प्रकृतिं सुताम्। २क. देवो रासेश्वरःस्व०। ३क. बाहू।

वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु। तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥३८॥
कृष्णप्राणाधिकाङ्गेन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम्। पादयुग्मं च सर्वाङ्गं संततं पातु सर्वतः ॥३९॥
प्राच्यां रक्षतु सा राधा वह्नौ कृष्णप्रियाऽवतु। दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु ॥४०॥
पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता। उत्तरे संततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥४१॥
सर्वेश्वरी सदैशान्यां पातु मां सर्वपूजिता। जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा ॥४२॥
महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु संततम्। कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् ॥४३॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं गुह्याद्गुह्यतरं परम्। तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥४४॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धृत्वा विष्णुसमो भवेत् ॥४५॥
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तिता। तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता ॥४६॥
पर्वतस्य सुता देवी साऽऽविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता ॥४७॥
सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनीति च। सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी ॥४८॥
शतलक्षजपेनैव सिद्धं च कवचं भवेत्। यदि स्यात्सिद्धकवचो न दग्धो वह्निना भवेत् ॥४९॥
एतस्मात्कवचाद्दुर्गे राजा दुर्योधनः पुरा। विशारदो जलस्तम्भे वह्निस्तम्भे च निश्चितम् ॥५०॥
मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तं च पुष्करे। सूर्यपर्वणि मेरौ च स सांदीपनये ददौ ॥५१॥

'वृन्दावन विलासिन्यै स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा' नितम्ब की रक्षा करे ॥३८॥ 'ओं कृष्णप्राणाधिकायै स्वाहा' युगल चरण और चारों ओर से सर्वांग की सतत रक्षा करे ॥३९॥ पूर्व की ओर राधा रक्षा करें, अग्निकोण की ओर कृष्णप्रिया रक्षा करें, दक्षिण की ओर रासेश्वरी रक्षा करें, नैर्ऋतकोण में गोपीशा रक्षा करें ॥४०॥ पश्चिम दिशा में निर्गुणा, वायव्य कोण में कृष्णपूजिता और उत्तर की ओर ईश्वरी मूल प्रकृति निरन्तर रक्षा करें ॥४१॥ ईशान कोण में सदा सर्वेश्वरी मेरी रक्षा करें, जल, स्थल, अन्तरिक्ष (आकाश में), स्वप्न, जागरण (सोते-जागते) में सर्वपूजिता और महाविष्णु की जननी चारों ओर से निरन्तर रक्षा करें। हे दुर्गे! यह श्री जगन्मंगल नामक कवच तुम्हें बता दिया, जो जिस किसी को देने योग्य नहीं है क्योंकि यह गुप्त से भी परम गुप्ततर है, तुम्हारे स्नेहवश मैंने तुम्हें बताया है, अतः किसी से न कहना ॥४२-४४॥ वस्त्र, अलंकार, चन्दन द्वारा गुरु की सविधि अर्चा करने के अनन्तर कण्ठ में अथवा दाहिने बाहु में इस कवच को धारण करने से वह विष्णु के समान हो जाता है ॥४५॥ विशेष प्रकार के महोत्सव में वह 'पर्वन्' कही गई है। उसको जो अधिष्ठात्री देवी है, वह पार्वती कही गई हैं। पर्वत की पुत्री के रूप में वह देवी पर्वत में उत्पन्न हुई थी। इस लिए पर्वत की अधिष्ठात्री देवी (होने) से पार्वती कहलायी। 'सना' शब्द का प्रयोग सर्वकाल के अर्थ में होता है और 'तनी' का प्रयोग विस्तृत अर्थ में होता है। इसलिए सर्वत्र सर्वकाल में विद्यमान होने से वह सनातनी है। सौ लाख जप करने से यह कवच सिद्ध होता है, यदि कवच सिद्ध हो गया, तो वह अग्नि से जल नहीं सकता ॥४६-४९॥ हे दुर्गे! पूर्वकाल में राजा दुर्योधन ने इसी कवच द्वारा जल और अग्नि का स्तम्भन किया था। पहले समय में मैंने पुष्कर क्षेत्र में सनत्कुमार को यह दिया था। मेरु पर्वत पर सान्दीपनि को सूर्य ग्रहण के समय

[1]बल्लाय तेन दत्तं च ददौ दुर्योधनाय सः। कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥५२॥
नित्यं पठति भक्त्येदं तन्मन्त्रोपासकश्च यः। विष्णुतुल्यो भवेन्नित्यं राजसूयफलं लभेत् ॥५३॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत्फलम्। सर्वव्रतोपवासेन पृथिव्याश्च प्रदक्षिणैः ॥५४॥
सर्वयज्ञेषु दीक्षायां नित्यं वै सत्यरक्षणे। नित्यं श्रीकृष्णसेवायां कृष्णनैवेद्यभक्षणे ॥५५॥
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं च लभेन्नरः। तत्फलं लभते नूनं पठनात्कवचस्य च ॥५६॥
राजद्वारे श्मशाने च सिंहव्याघ्रान्विते वने। दावाग्नौ संकटे चैव दस्युचौरान्विते भये ॥५७॥
कारागारे [2]विपद्ग्रस्ते घोरे च दृढबन्धने। व्याधियुक्तो भवेन्मुक्तो धारणात्कवचस्य च ॥५८॥
इत्येतत्कथितं दुर्गे तवैवेदं महेश्वरि। त्वमेव सर्वरूपा मां माया पृच्छसि मायया ॥५९॥

नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिकाख्यानं स्मारं स्मारं च माधवम्। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो बभूव सः ॥६०॥
न कृष्णसदृशो देवो न गङ्गासदृशी सरित्। न पुष्करात्परं तीर्थं न वर्णो ब्राह्मणात्परः ॥६१॥
परमाणोः परं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान्। नभः परं च विस्तीर्णं यथा नास्त्येव नारद ॥६२॥
तथा न वैष्णवाज्ज्ञानी योगीन्द्रः शंकरात्परः। कामक्रोधलोभमोहा जितास्तेनैव नारद ॥६३॥

उन्होंने दिया और सान्दीपनि ने बलराम को तथा बलराम ने वह दुर्योधन को दिया था। इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥५०-५२॥ उन (राधा) के मन्त्र की उपासना करने वाला यदि भक्तिपूर्वक नित्य इसका पाठ करता है, तो वह विष्णु के समान होकर नित्य राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥५३॥ इस प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान, समस्त दान, सम्पूर्ण व्रतों के उपवास, पृथिवी की परिक्रमा, समस्त यज्ञों की दीक्षा, नित्य सत्य की रक्षा, भगवान् श्रीकृष्ण की नित्य सेवा, उनके नैवेद्य के भक्षण और चारों वेदों के पारायण से जो फल प्राप्त होता है, वह इस कवच के पाठ करने से निश्चय प्राप्त होता है ॥५४-५६॥ राज दरबार, श्मशान, सिंह-बाघ से युक्त वन, दावाग्नि, संकट, चोर-डाकुओं के भय, कारागार (जेल), घोर विपत्ति, दृढ़बन्धन (गिरफ्तारी) और रोगी होने पर इस कवच के धारण करने से (उस संकट से) शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥५७-५८॥ हे दुर्गे! हे महेश्वरि! यह जो मैंने तुम्हें सुनाया है, वह तुम्हारी ही वस्तु है, क्योंकि तुम सर्वरूपा हो, माया होकर माया (छल) करके मुझसे पूछ रही हो ॥५९॥

नारायण बोले—इस प्रकार राधिका जी का आख्यान कहने के अनन्तर बार-बार भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करने से शिवजी के समस्त शरीर में रोमाञ्च हो आया और नेत्र सजल हो गये ॥६०॥ क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के समान कोई देव नहीं है तथा गंगा के समान नदी, पुष्कर से बढ़कर तीर्थ और ब्राह्मण से बढ़कर उच्चवर्ण कोई नहीं है ॥६१॥ हे नारद! जिस भाँति परमाणु से बढ़कर सूक्ष्म, महाविष्णु से बढ़कर महान् और आकाश से बढ़ कर विस्तीर्ण कोई नहीं है उसी प्रकार वैष्णव से बढ़ कर ज्ञानी, शंकर जी से बढ़कर योगिराज और नहीं है, क्योंकि हे नारद! इन्होंने

१क. बालाय। २क. रिपुग्रस्ते।

स्वप्ने जागरणे शश्वत्कृष्णध्यानरतः शिवः। यथा कृष्णस्तथा शंभुर्न भेदो माधवेशयोः ॥६४॥
यथा शंभुर्वैष्णवेषु यथा देवेषु माधवः। तथेदं कवचं वत्स कवचेषु प्रशस्तकम् ॥६५॥
शिशब्दो मङ्गलार्थश्च वकारो दातृवाचकः। मङ्गलानां प्रदाता यः स शिवः परिकीर्तितः ॥६६॥
नराणां संततं विश्वे शं कल्याणं करोति यः। कल्याणं मोक्ष इत्युक्तं स एव शंकरः स्मृतः ॥६७॥
ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां वेदवादिनाम्। तेषां च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः ॥६८॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी। तस्या देवः पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः ॥६९॥
विश्वस्थानां च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम्। महेश्वरं च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७०॥
हे ब्रह्मपुत्र धन्योऽसि यद्गुरुश्च महेश्वरः। श्रीकृष्णभक्तिदाता यो भवान्पृच्छति मां च किम् ॥७१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० राधिकोपा० तन्मन्त्रादिकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्नतीव परमाद्भुतम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥१॥
दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमाया शिवा सती। नित्या सत्या भगवती शर्वाणी सर्वमङ्गला ॥२॥
अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वती च सनातनी। नामानि कौथुमोक्तानि सर्वेषां शुभदानि च ॥३॥

ही काम, क्रोध, लोभ और मोह को जीता है। सोते-जागते सब समय शिव भगवान् कृष्ण के ध्यान में निरन्तर मग्न रहते हैं, अतः जैसे कृष्ण हैं वैसे शिव हैं, इन माधव और शंकर में कोई भेद नहीं है। हे वत्स! जिस प्रकार वैष्णवों में शम्भु, देवों में माधव (श्रेष्ठ) हैं, वैसे ही समस्त कवचों में यह कवच अति प्रशस्त है ॥६२-६५॥ (शिव शब्द में) शि शब्द का मंगल अर्थ और वकार का दाता अर्थ है, अतः मंगलों के प्रदाता को शिव कहा जाता है ॥६६॥ विश्व में मनुष्यों का जो निरन्तर कल्याण करता है, उसे शंकर कहा गया है कल्याण को मोक्ष कहा गया है ॥६७॥ ब्रह्मादि देवगण तथा वेदवक्ता मुनिवृन्द का जो महान् देवता है, उसे 'महादेव' कहा गया है ॥६८॥ समस्त विश्व में ईश्वरी मूल प्रकृति अत्यन्त पूजित है और उसका जो पूजित देव है, उसे महादेव कहा जाता है ॥६९॥ विश्व के समस्त महान् प्राणियों का वह स्वयं ईश्वर है, इसी से मनीषी लोग उन्हें 'महेश्वर' कहते हैं। हे ब्रह्मपुत्र! तुम धन्य हो, श्रीकृष्ण की भक्ति देने वाले महेश्वर जिसके गुरु हैं, ऐसे आप मुझसे क्यों पूछते हैं ॥७०-७१॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के राधिकोपाख्यान में उनके मंत्र आदि कथन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥५६॥

अध्याय ५७

दुर्गा आदि नामों की व्युत्पत्ति

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! मैंने परम अद्भुत समस्त आख्यान सुन लिया, अब श्री दुर्गा जी का उत्तम उपाख्यान सुनना चाहता हूँ। दुर्गा, नारायणी, ईशानी, विष्णुमाया, शिवा, सती, नित्या, सत्या, भगवती, शर्वाणी, सर्वमंगला, अम्बिका, वैष्णवी, गौरी, पार्वती और सनातनी ये कौथुम शाखा में कहे गये सभी नाम शुभप्रद हैं ॥१-३॥

अर्थं षोडशनाम्नां च सर्वेषामीप्सितं वरम्। ब्रूहि वेदविदां श्रेष्ठ वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥४॥
केन वा पूजिता साऽऽदौ द्वितीये केन वा पुरा। तृतीये वा चतुर्थे वा केन सर्वत्र पूजिता ॥५॥

नारायण उवाच

अर्थं षोडशनाम्नां च विष्णुर्वेदे चकार सः। ज्ञात्वा पुनः पृच्छसि त्वं कथयामि यथागमम् ॥६॥
दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे च कर्मणि। शोके दुःखे च नरके यमदण्डे च जन्मनि ॥७॥
महाभयेऽतिरोगे चाप्याशब्दो हन्तृवाचकः। एतान्हन्त्येव या देवी सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥८॥
यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः। शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ॥९॥
ईशानः सर्वसिद्धयर्थे चाशब्दो दातृवाचकः। सर्वसिद्धिप्रदात्री या साऽपीशाना प्रकीर्तिता ॥१०॥
सृष्टा माया पुरा सृष्टौ विष्णुना परमात्मना। मोहितं मायया विश्वं विष्णुमाया प्रकीर्तिता ॥११॥
शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया। प्रिये दातरि चाऽऽशब्दो शिवा तेन प्रकीर्तिता ॥१२॥
सद्बुद्धयधिष्ठातृदेवी विद्यमाना युगे युगे। पतिव्रता सुशीला च सा सती परिकीर्तिता ॥१३॥
यथा नित्यो हि भगवान्नित्या भगवती तथा। स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृते लये ॥१४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम्। दुर्गा सत्यस्वरूपा सा प्रकृतिर्भगवान्यथा ॥१५॥

हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! इन सोलह नामों के समुचित अर्थ बताने की कृपाकरें, जो सभी के लिए अभिलषित, श्रेष्ठ, वेदोक्त और सर्वसम्मत हों॥४॥ सर्वप्रथम इस देवी की किसने आराधना की? पुनः दूसरा, तीसरा और चौथा कौन हैं जिन्होंने उनकी पूजा की? और किसके द्वारा ये पूजित हुईं ॥५॥

नारायण बोले—भगवान् विष्णु ने वेद में इन सोलह नामों के अर्थ बताये हैं, उसे जानते हुए भी मुझसे पूछ रहे हो, अतः शास्त्रानुसार मैं कह रहा हूँ॥६॥ (दुर्गा शब्द में) दुर्ग शब्द दैत्य, महाविघ्न, संसाररूपी बन्धन, संसार के कर्म, शोक, दुःख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महाभय, और असाध्यरोग अर्थ में प्रयुक्त होता है, तथा आ शब्द का हन्ता अर्थ है अतः इन सभी का जो हनन (नाश) करती है उस देवी को दुर्गा कहा जाता है॥७-८॥ यश, तेज, रूप और गुणों में यह नारायण के समान है और उन्हीं की यह शक्ति है अतः इसे नारायणी कहते हैं॥९॥ समस्त सिद्धि अर्थ में ईशान शब्द प्रयुक्त होता है और आ शब्द का अर्थ दाता है अतः सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली देवी को 'ईशाना' कहा जाता है॥१०॥ परमात्मा विष्णु ने सृष्टि के पूर्वकाल में माया को उत्पन्न किया और उस माया द्वारा समस्त विश्व को मोहित कर दिया, अतः इसे विष्णुमाया कहते हैं॥११॥ शिव में वह कल्याण रूप है, शिवदायिनी और शिव की प्रिया है। प्रिय और दाता अर्थ में आ शब्द प्रयुक्त होता है, इसी से उसे शिवा कहा जाता है॥१२॥ प्रत्येक युग में यह सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी विद्यमान रहती है, तथा पतिव्रता और उत्तम-स्वभाव की होने के नाते इसे 'सती' कहा जाता है॥१३॥ जिस प्रकार भगवान् नित्य हैं उसी प्रकार यह भगवती भी नित्या है। प्राकृत लय के समय अपनी माया द्वारा उस ईश (भगवान् कृष्ण में) तिरोहित हो जाती है। इसीलिए तृण से लेकर ब्रह्मा तक सब कुछ कृत्रिम (बनावटी) और मिथ्या है। भगवान् की भाँति प्रकृति दुर्गा भी सत्य-स्वरूपा हैं॥१४-१५॥ प्रत्येक युग में जिसमें सभी सिद्धियाँ और ऐश्वर्यादि वर्तमान रहते हैं, उस सिद्धादिक अर्थ

सिद्धैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे। सिद्धादिके भगो ज्ञेयस्तेन सा भगवती स्मृता ॥१६॥
सर्वान्मोक्षं प्रापयति जन्ममृत्युजरादिकम्। चराचरांश्च विश्वस्थाञ्छर्वाणी तेन कीर्तिता ॥१७॥
मङ्गलं मोक्षवचनं चाऽऽशब्दो दातृवाचकः। सर्वान्भोक्षान्या ददाति सैव स्यात्सर्वमङ्गला ॥१८॥
हर्षे संपदि कल्याणे मङ्गलं परिकीर्तितम्। तान्ददाति च सर्वेभ्यस्तेन सा सर्वमङ्गला ॥१९॥
अम्बेति मातृवचनो वन्दने पूजने सदा। पूजिता वन्दिता माता जगतां तेन साऽम्बिका ॥२०॥
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णोः शक्तिस्वरूपिणी। सृष्टौ च विष्णुना सृष्टा वैष्णवी तेन कीर्तिता ॥२१॥
गौरः पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्मले। तस्याऽऽत्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्तिता ॥२२॥
गुरुः शंभुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती। गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्तिता ॥२३॥
तिथिभेदे पर्वभेदे कल्पभेदेऽन्यभेदके। ख्यातौ तेषु च विख्याता पार्वती तेन कीर्तिता ॥२४॥
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तिता। तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता ॥२५॥
पर्वतस्य सुता देवी साऽऽविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता ॥२६॥
सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनीति च। सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी ॥२७॥
अर्थः षोडशनाम्नां च कीर्तितश्च महामुने। यथागमं त्वं वेदोक्तोपाख्यानं च निशामय ॥२८॥
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना। वृन्दावने च सृष्ट्यादौ गोलोके रासमण्डले ॥२९॥

में भग शब्द प्रयुक्त होने के कारण उसे भगवती कहते हैं ॥१६॥ जो सभी को मोक्ष दिलाती हैं और समस्त विश्व के चर-अचर प्राणियों को जन्म, मृत्यु एवं जरा आदि प्रदान करती हैं, उसे 'शर्वाणी' कहते हैं ॥१७॥ मंगल शब्द का मोक्ष अर्थ और आ शब्द का दाता अर्थ है, तथा जो सभी को मोक्ष प्रदान करती है, उसे 'सर्वमंगला' कहा गया है ॥१८॥ हर्ष, सम्पत्ति और कल्याण अर्थ में मंगल शब्द प्रयुक्त होता है और वह सभी प्राणियों को प्रदान करती है, इसलिये भी उसे 'सर्वमंगला' कहते हैं ॥१९॥ माता तथा सदा वन्दन एवं पूजन अर्थ में अम्बा शब्द प्रयुक्त होता है अतः जगत् की वन्दिता एवं पूजिता माता होने के नाते उसे अम्बिका कहते हैं ॥२०॥ विष्णुभक्त विष्णुस्वरूप, विष्णु की शक्ति और सृष्टि में विष्णु द्वारा उत्पन्न होने के नाते उसे 'वैष्णवी' कहते हैं ॥२१॥ गौर शब्द पीत वर्ण, निर्लिप्त परब्रह्म और निर्मल अर्थ में प्रयुक्त होता है और परमात्मा की शक्ति होने के कारण उसे 'गौरी' कहा जाता है ॥२२॥ सभी के गुरु शिव हैं, उनकी यह शक्ति है और कृष्ण भी सभी के गुरु हैं उनकी यह माया है इससे भी इन्हें 'गौरी' कहा गया है ॥२३॥ तिथिभेद, पर्वभेद कल्पभेद और अन्य भेद तथा ख्याति में विख्यात होने के नाते उसे 'पार्वती' कहा गया है ॥२४॥ महोत्सव विशेष अर्थ में पर्वन् शब्द प्रयुक्त होता है, उसकी अधिष्ठात्री देवी होने के नाते उसे 'पार्वती' कहा जाता है ॥२५॥ और यह देवी पर्वत की कन्या होकर पर्वत पर प्रकट हुई और पर्वतों की अधिष्ठात्री देवी होने के नाते भी उसे 'पार्वती' कहा गया है ॥२६॥ सर्वकाल अर्थ में सना शब्द प्रयुक्त होता है, और विस्तृत अर्थ में तनी शब्द। अतः सभी जगह सब समय विद्यमान रहने के कारण उसका 'सनातनी' नामकरण हुआ है ॥२७॥ हे महामुने! सोलहों नामों का अर्थ मैंने कह दिया है, अब वेदानुसार उनका उपाख्यान भी शास्त्र रीति से कह रहा हूँ, सुनो ॥२८॥ सृष्टि के आदि में परमात्मा श्रीकृष्ण ने गोलोक में वृन्दावन के रासमण्डल में इनकी सर्वप्रथम अर्चना की ॥२९॥ दूसरे मधुकैटभ से भयभीत होकर

मधुकैटभभीतेन ब्रह्मणा सा द्वितीयतः। त्रिपुरप्रेरितेनैव तृतीये त्रिपुरारिणा ॥३०॥
भ्रष्टश्रिया महेन्द्रेण शापाद्दुर्वासिसः पुरा। चतुर्थे पूजिता देवी भक्त्या भगवती सती ॥३१॥
तदा मुनीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैर्देवैश्च मुनिपुंगवैः। पूजिता सर्वविश्वेषु समभूत्सर्वतः सदा ॥३२॥
तेजःसु सर्वदेवानां साऽऽविर्भूता पुरा मुने। सर्वे देवा ददुस्तस्यै शस्त्राण्याभरणानि च ॥३३॥
दुर्गादियश्च दैत्याश्च निहिता दुर्गया तथा। दत्तं स्वराज्यं देवेभ्यो वरं च यदभीप्सितम् ॥३४॥
कल्पान्तरे पूजिता सा सुरथेन महात्मना। राज्ञा च मेधशिष्येण मृन्मय्यां च सरित्तटे ॥३५॥
मेषादिभिश्च महिषैः कृष्णसारैश्च गण्डकैः। छागैरिक्षुसुकूष्माण्डैः पक्षिभिर्बलिभिर्मुने ॥३६॥
वेदोक्तांश्चैव दत्त्वैवमुपचारांस्तु षोडश। ध्यात्वा च कवचं धृत्वा संपूज्य च विधानतः ॥३७॥
राजा कृत्वा परीहारं वरं प्राप यथेप्सितम्। मुक्तिं संप्राय वैश्यश्च संपूज्य च सरित्तटे ॥३८॥
तुष्टाव राजा वैश्यश्च साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः। ससर्ज मृन्मयीं तां वै गभीरे निर्मले जले ॥३९॥
मृन्मयीं तामदृष्ट्वा च जलधौतां नराधिपः। रुरोद च तदा वैश्यस्ततः स्थानान्तरं ययौ ॥४०॥
त्यक्त्वा देहं च वैश्यस्तु पुष्करे दुष्करं तपः। कृत्वा जगाम गोलोकं दुर्गादेवीवरेण सः ॥४१॥
राजा ययौ स्वराज्यं च पूज्यो निष्कण्टकं बली। भोगं च बुभुजे भूपः षष्टिवर्षसहस्रकम् ॥४२॥

ब्रह्मा ने और तीसरे त्रिपुर से प्रेरित होकर त्रिपुरारि (शिव) ने उनकी पूजा की ॥३०॥ चौथे पूर्वसमय में महेन्द्र ने दुर्वासा द्वारा प्रदत्त शाप के कारण ऐश्वर्यादि से भ्रष्ट होने पर भक्तिपूर्वक सती भगवती देवी की अर्चना की ॥३१॥ उसी समय से वह समस्त विश्व में मुनीन्द्रवृन्द, सिद्धगण, देवों और श्रेष्ठ महर्षियों द्वारा पूजित होकर चारों ओर सदैव पूजित होने लगी ॥३२॥ हे मुने! प्राचीन समय में समस्त देवों के तेजःपुञ्ज से प्रकट होकर उस दुर्गा देवी ने, जिसे समस्त देवों ने अपने शस्त्र और आभूषण प्रदान किये थे, दुर्ग आदि दैत्यों को मारकर समस्त राज्य और मनइच्छित वरदान देवों को प्रदान किया ॥३३-३४॥ कल्पान्तर में मेघ के शिष्य राजा सुरथ ने नदी के तट पर मिट्टी की मूर्ति बनाकर देवी की पूजा की थी ॥३५॥ हे मुने! भेड़ें आदि, भैंसे, मृग, मेढ़क, बकरे, ऊख, कुम्हड़े, और पक्षियों की बलि प्रदान द्वारा वेदोक्त षोडशोपचार से सविधि-पूजन करने के उपरान्त राजा ने कवच धारण किया तथा देवी की स्तुति करके मनइच्छित वर प्राप्त किया। (समाधि नामक) वैश्य ने भी नदी-तट पर देवी की आराधना करके मुक्ति प्राप्त की ॥३६-३८॥ राजा और वैश्य दोनों ने सजलनयन एवं हाथ जोड़े स्तुति करते हुए मिट्टी की उस प्रतिमा को गम्भीर जल में डाल दिया ॥३९॥ अनन्तर राजा उस मिट्टी की मूर्ति को, जो जल में घुल गयी थी, न देखकर रुदन करने लगा और वह वैश्य उसी समय वहाँसे दूसरी जगह चला गया ॥४०॥ पुष्कर में कठिन तप करके उस वैश्य ने अपनी देह का त्याग किया और दुर्गा देवी के वरदान द्वारा गोलोक की प्राप्ति की एवं उस बलवान् राजा ने अपने निष्कण्टक राज्य का साठ सहस्र वर्ष तक उपभोग किया। अनन्तर स्त्री और राज्य पुत्र को सौंपकर कालयोगवश पुष्कर में तप करके सावर्णि मनु

भार्यां स्वराज्यं संन्यस्य पुत्रे वै कालयोगतः । मनुर्बभूव सावर्णिस्तप्त्वा वै पुष्करे तपः ॥४३॥
इत्येवं कथितं वत्स समासेन यथागमम् । दुर्गाख्यानं मुनिश्रेष्ठ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० दुर्गोपा० दुर्गादिनाम-
व्युत्पत्त्यादिकथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

कस्य वंशो ध्रुवो राजा सुरथो धर्मिणां वरः । कथं संप्राप वै ज्ञानं मेधसो ज्ञानिनां वरात् ॥१॥
कस्य वंशो ध्रुवो ब्रह्मन्मेधसो मुनिसत्तम । बभूव कुत्र संवादो नृपस्य मुनिना सह ॥२॥
सख्यं बभूव कुत्रास्य वा प्रभो नृपवैश्ययोः । व्यासेन श्रोतुमिच्छामि वद वेदविदां वर ॥३॥

नारायण उवाच

अत्रिश्च ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य पुत्रो निशाकरः । स च कृत्वा राजसूयं द्विजराजो बभूव ह ॥४॥
गुरुपत्न्यां च तारायां तस्याभूच्च बुधः सुतः । बुधपुत्रस्तु चैत्रश्च तत्पुत्रः सुरथः स्मृतः ॥५॥

होकर जन्म ग्रहण किया। हे वत्स! हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने तुम्हें शास्त्रानुसार दुर्गा जी का उपाख्यान सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥४१-४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में दुर्गा आदि नामों की व्युत्पत्ति आदि कथन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

अध्याय ५८

तारा और चन्द्रमा का दोष-निवारण

नारद बोले—धार्मिकों में श्रेष्ठ राजा सुरथ किसके वंश में उत्पन्न हुआ ? और ज्ञानिप्रवर श्री मेधस् ऋषि से उसने कैसे ज्ञान प्राप्त किया? ॥१॥ हे ब्रह्मन्! हे मुनिसत्तम! मेधस् ऋषि किस वंश में उत्पन्न हुए ? और राजा का मुनि के साथ संवाद किस स्थान पर हुआ ? ॥२॥ हे प्रभो! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य की मित्रता कहाँ हुई थी ? मैं यह सब विस्तार से सुनना चाहता हूँ ॥३॥

नारायण बोले—ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और उनके चन्द्रमा नामक पुत्र हुए, जो राजसूय यज्ञ सुसम्पन्न करने के कारण 'द्विजराज' कहलाये थे ॥४॥ उन्होंने गुरु (बृहस्पति) की पत्नी तारा में बुध नामक पुत्र उत्पन्न किया। बुध के पुत्र चैत्र और चैत्र के पुत्र सुरथ हुए ॥५॥

नारद उवाच

गुरुपत्न्यां च तारायां समभूत्तत्सुतः कथम् । अहो व्यतिक्रमं ब्रूहि देवस्य च महामुने ॥६॥

नारायण उवाच

संपन्मत्तो महाकामी [1] ददर्श जाह्नवीतटे । तारां सुरगुरोः पत्नीं धर्मिष्ठां च पतिव्रताम् ॥७॥
सुस्नातां सुन्दरीं रम्यां पीनोन्नतपयोधराम् । सुश्रोणीं सुनितम्बाढ्यां मध्यक्षीणां मनोहराम् ॥८॥
सुदतीं कोमलाङ्गीं च नवयौवनसंयुताम् । सूक्ष्मवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥९॥
कस्तूरीबिन्दुना सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना । सिन्दूरबिन्दुना चारुफालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् ॥१०॥
वायुनाऽधोवस्त्रहीनां सकामां [2] रक्तलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां पक्वबिम्बाधरां वराम् ॥११॥
सुस्मितां नम्रवक्त्रां च लज्जया चन्द्रदर्शनात् । गच्छन्तीं स्वगृहं हर्षान्मत्तवारणगामिनीम् ॥१२॥
तां दृष्ट्वा मन्मथाक्रान्तश्चन्द्रो लज्जां जहौ मुने । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः सकामस्तामुवाच सः ॥१३॥

चन्द्र उवाच

योषिच्छ्रेष्ठे क्षणं तिष्ठ वरिष्ठे रसिकासु च । सुविदग्धे विदग्धानां मनो हरसि संततम् ॥१४॥

नारद बोले—हे महामुने ! गुरुपत्नी तारा में उन्होंने कैसे पुत्र उत्पन्न किया, क्योंकि यह तो देव का व्यतिक्रम है, अतः उसे अवश्य बताने की कृपा कीजिये ॥६॥

नारायण बोले—एक बार धन-मदान्ध और महाकामी चन्द्रमा गंगा के किनारे विचरण कर रहे थे। उसी समय स्नान के लिए आई हुई पतिव्रता तारा को उन्होंने देखा, जो देवगुरु (बृहस्पति) की पत्नी और धर्मात्मा थी ॥७॥ वह रमणीय सुन्दरी मोटे और उन्नत स्तन, उत्तम जघन भाग, अति सुन्दर नितम्ब, पतली कमर, सुन्दर दाँतों की पंक्ति, कोमल अंग, नवयौवन, सूक्ष्म वस्त्र एवं रत्नों के भूषणों से भूषित थी। उसके भाल पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ नीचे चन्दन-बिन्दु था और सुन्दर तथा उज्ज्वल माँग में सिन्दूर लगा था ॥८-१०॥ उसी बीच वायु के झकोरे से अधोवस्त्र हट गया। तब रक्तवर्ण के नेत्र, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख और पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली वह कामिनी, मन्द मुसुकाती, नीचे मुख किये, लज्जा की ओट में चन्द्रमा को देखती हुई अति हर्ष से मतवाले हाथी की-सी चाल से अपने घर जाने लगी ॥११-१२॥ हे मुने ! उसे देखकर चन्द्रमा अति कामपीड़ित हो गये। इससे उन्होंने लज्जा त्याग कर शरीर के सर्वांग में पुलकायमान होने के नाते काम-भावना से उससे कहा—॥१३॥

चन्द्र बोले—हे रमणीश्रेष्ठ ! एवं रसिक ललनाओं में उत्तम ! क्षणमात्र ठहर जाओ ! हे सुदक्षे ! तुम विदग्ध (चतुर) पुरुषों के मन का निरन्तर अपहरण करती हो ॥१४॥ हे काम- सागरे ! बृहस्पति

---

१ ख. व्यचरज्जा० । २ क. वक्रलो० ।

निषेव्य प्रकृतिं जन्मसहस्रं कामसागरे । तपःफलेन त्वां प्राप बृहच्छ्रोणीं बृहस्पतिः ॥१५॥
अहो तपस्विना सार्धमविदग्धेन वेधसा । योजिता त्वं रसवती शश्वत्कामातुरा वरा ॥१६॥
किं वा सुखं च विज्ञातमविज्ञेषु समागमे । विदग्धाया विदग्धेन संगमः सुखसागरः ॥१७॥
कामेन कामिनी त्वं च दग्धाऽसि व्यर्थमीश्वरि । कर्मणा वाऽऽत्मदोषाद्वा को जानाति मनः स्त्रियाः ॥१८॥
दिने दिने वृथा याति दुर्लभं नवयौवनम् । नवीनयौवनस्थाया वृद्धेन स्वामिना तव ॥१९॥
शश्वत्तपस्यायुक्तश्च 'कृष्णमात्मानमीप्सितम् । स्वप्ने जागरणे वाऽपि ध्यायन्नास्ते बृहस्पतिः ॥२०॥
सर्वकामरसज्ञा त्वं निष्कामं काममीप्सितम् । ध्यायन्ती कामुकी शश्वद्यूनां शृंगारमात्मनि ॥२१॥
अन्यश्च त्वन्मनः कामो भिन्नं त्व द्भर्तुरीप्सितम् । ययोश्च भिन्नौ विषयौ का प्रीतिःसंगमे तयोः ॥२२॥
वसन्ती पुष्पतल्पे च गन्धचन्दनचर्चिते । मोदस्व मां गृहीत्वा त्वं वसन्ते माधवीवने ॥२३॥
सुगन्ध्युत्फुल्लकुसुमे निर्जने चन्दने वने । भवती युवती भाग्यवती तत्रैव मोदताम् ॥२४॥
चन्दने चम्पकवने शीतचम्पकवायुना । रम्ये चम्पकतल्पे च क्रीडां कुरु मया सह ॥२५॥
रम्यायां मलयद्रोण्यां मन्दचन्दनवायुना । रामे रम मया सार्धमतीव निर्जने वने ॥२६॥

ने सहस्रों जन्म श्री दुर्गा जी की सेवा करके उस तपस्या के फलस्वरूप तुम बृहत् श्रोणी भाग वाली स्त्री को प्राप्त किया है ॥१५॥ किन्तु आश्चर्य है कि मूर्ख ब्रह्मा ने रसीली और निरन्तर कामातुर रहने वाली तुम ऐसी उत्तम स्त्री को एक तपस्वी के गले बाँध दिया है ॥१६॥ इसलिए उस अज्ञानी (बृहस्पति) के साथ समागम में तुम्हें कौन सुख मिलता होगा। क्योंकि विदग्धा (चतुर) स्त्री का विदग्ध (चतुर) पुरुष के ही साथ जब समागम होता है, तब सुखसागर उमड़ पड़ता है ॥१७॥ हे ईश्वरि! तुम कामिनी होकर जो काम द्वारा व्यर्थ जल रही हो, यह कर्मवश या अपने दोष के नाते हो रहा है। क्योंकि स्त्री के मन को कौन जान सकता है ॥१८॥ तुम्हारी नयी जवानी है और पति वृद्ध हैं, अतः उनके साथ तुम्हारा यह दुर्लभ नव यौवन दिन-दिन व्यर्थ होता जा रहा है ॥१९॥ और बृहस्पति तो निरन्तर तपस्या में लगे रहते हैं सोते-जागते सब समय अपने इष्टदेव परमात्मा श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न रहते हैं ॥२०॥ वे तो निष्काम हैं और तुम काम के समस्त रस को जानती हो, इससे तुम्हें काम की चाह है, क्योंकि निरन्तर कामुकी बन कर युवा पुरुषों के शृंगार का तुम ध्यान करती रहती हो ॥२१॥ तुम्हारा मन काम चाहता है और तुम्हारे पति के मन को इससे भिन्न और ही कुछ अभीष्ट है। तो जिस (पति-पत्नी) के (मन के) विषय भिन्न-भिन्न हों, उनके समागम में उन्हें कौन सुख मिल सकेगा? ॥२२॥ इसलिए वसन्त के समय इस माधवी वन में गन्ध एवं चन्दन से चर्चित वासन्ती पुष्प की शय्या पर तुम हमारे साथ (रति का) आनन्द प्राप्त करो ॥२३॥ उस निर्जन चन्दन के वन में, जो सुगन्धित और पूर्ण-विकसित पुष्पों से सुशोभित है, भाग्यवती युवती आप (वहाँ चलकर) आनन्द लें ॥२४॥ चन्दन वन के अनन्तर चम्पक वन में चम्पक के शीतल वायु के लहरों में चम्पा की रमणीक शय्या पर मेरे साथ विहार करो ॥२५॥ हे सुन्दरि! मन्द चन्दन-वायु से युक्त मन्दराचल की कन्दरा के निर्जन वन में मेरे साथ रमण करो ॥२६॥ हे

---

१ क. ० मीश्वरम् ।

स्वर्णरेखातटवने नर्मदापुलिने शुभे । सुराणां वाञ्छितस्थाने रतिं कुरु मया सह ॥२७॥
इत्युक्त्वा मदनोन्मत्तो मदनाधिकसुन्दरः । पपात चरणे देव्या मन्दो मन्दाकिनीतटे ॥२८॥
निरुद्धमार्गा चन्द्रेण शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । अभीतोवाच कोपेन रक्तपङ्कजलोचना ॥२९॥

तारोवाच

धिक् त्वां चन्द्र तृणं मन्ये परस्त्रीलम्पटं शठम् । अत्रेरभाग्यात्त्वं पुत्रो व्यर्थं ते जन्म जीवनम् ॥३०॥
अरे कृत्वा राजसूयमात्मानं मन्यसे बली । बभूव पुण्यं ते व्यर्थं विप्रस्त्रीषु च यन्मनः ॥३१॥
यस्य चित्तं परस्त्रीषु सोऽशुचिः सर्वकर्मसु । न कर्मफलभाक्पापी निन्द्यो विश्वेषु सर्वतः ॥३२॥
सतीत्वं मे नाशयसि यक्ष्मग्रस्तो भविष्यसि । अत्युच्छ्रितो निपतनं प्राप्नोतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥३३॥
दुष्टानां दर्पहा कृष्णो दर्पं ते निहनिष्यति । त्यज मां मातरं वत्स सत्यं ते शं भविष्यति ॥३४॥
इत्युक्त्वा तारका साध्वी रुरोद च मुहुर्मुहुः । चकार साक्षिणं धर्मं सूर्यं वायुं हुताशनम् ॥३५॥
ब्रह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम् । दिनं रात्रिं च संध्यां च सर्वं सुरगणं मुने ॥३६॥
तारकावचनं श्रुत्वा न भीतः स चुकोप ह । करे धृत्वा रथे तूर्णं स्थापयामास सुन्दरीम् ॥३७॥

शुभे ! नर्मदा के किनारे स्वर्णरेखा के तटवर्ती वन में—देवताओं के अभीष्ट स्थान में—मेरे साथ रति करो ॥२७॥ इस प्रकार मन्दाकिनी के तट पर मन्दबुद्धि चन्द्रमा, जो काम से उन्मत्त और काम से अधिक सुन्दर थे, इतना कहकर तारा देवी के चरण पर गिर पड़े ॥२८॥ चन्द्रमा के इस भाँति मार्ग रोक लेने पर तारा के कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूख गये और उसके नेत्र रक्त कमल की भाँति लाल-लाल हो गये। अनन्तर उसने निर्भय होकर क्रोध से कहा ॥२९॥

तारा बोली—हे चन्द्र ! तुम्हें धिक्कार है, मैं तुम्हें तृणवत् समझती हूँ, क्योंकि तुम परस्त्रीलम्पट होने के नाते शठ हो। अत्रि का दुर्भाग्य था, जो तुम्हें पुत्ररूप में प्राप्त किया, क्योंकि तुम्हारा जन्म और जीवन दोनों व्यर्थ हैं ॥३०॥ अरे ! राजसूय यज्ञ करके तुम अपने को बड़ा बलवान् समझते हो। ब्राह्मण की स्त्रियों में तुम्हारे मन के दूषित होने के कारण वह तुम्हारा समस्त पुण्य व्यर्थ हो गया है ॥३१॥ क्योंकि जिसका चित्त परस्त्रियों में लगा रहता है, वह सभी कर्मों में अपवित्र माना जाता है। इतना ही नहीं, वह पापी समस्त विश्व में सब प्रकार से निन्दित होने के नाते (उत्तम) कर्मफल का भागी नहीं होता है ॥३२॥ यदि तुमने मेरा सतीत्व नष्ट किया तो तुम्हें यक्ष्मा (तपेदिक) का रोग हो जायगा। क्योंकि वेद में ऐसा सुना गया है कि—जो अत्यन्त उन्नत हो जाता है उसका पतन होता ही है ॥३३॥ दुष्टों के अभिमान को नष्ट करने वाले भगवान् कृष्ण तुम्हारे दर्प का हनन करेंगे। अतः हे वत्स ! मैं तुम्हारी माता हूँ, मुझे छोड़ दो, सत्य कहती हूँ, तुम्हारा कल्याण होगा ॥३४॥ इतना कह कर पतिव्रता तारा ने बार-बार रुदन किया और धर्म, सूर्य, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, परमात्मा, आकाश, पवन, पृथ्वी, दिन-रात्रि, सन्ध्या, और समस्त देवों को साक्षी (गवाही) बनाने लगी ॥३५-३६॥ हे मुने ! तारा की ऐसी बातें सुनकर चन्द्रमा भयभीत नहीं हुआ अपितु क्रुद्ध हो गया और उसने उस सुन्दरी के दोनों हाथ पकड़ कर बलात् शीघ्रता

रथं च चालयामास मनोयायी मनोहरम्। मनोहरां गृहीत्वा तां स च रमे मनोहरः॥३८॥
विस्पन्दके सुरवने चन्दने पुष्पभद्रके। पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने॥३९॥
सुगन्धिपुष्पतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना। निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनचर्चिते॥४०॥
शैले शैले नदे नद्यां शृङ्गारं कुर्वतोस्तयोः। गतं वर्षशतं[1] हर्षान्मुहूर्तमिव नारद॥४१॥
बभूव शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः। तेजस्विनि तथा शुक्रे तेषां च बलिनां गुरौ॥४२॥
अभयं च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दनः। गुरुं जहास देवानां स्वविपक्षं बृहस्पतिम्॥४३॥
सभायां जहसुर्हृष्टा बलिनो दितिनन्दनाः। अभयं च ददुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने॥४४॥
सतीसतीत्वध्वंसेन पापिष्ठे चन्द्रमण्डले। बभूव शशरूपं च कलङ्कं निर्मले मलम्॥४५॥
उवाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदां वरः। हितं तथ्यं वेदयुक्तं परिणामसुखावहम्॥४६॥

शुक्र उवाच

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रेर्भगवतः सुतः। दुर्नीतं कर्म ते पुत्र नीचवन्न यशस्करम्॥४७॥
राजसूयस्य सुफले निर्मले कीर्तिमण्डले। सुधाराशौ सुराबिन्दुरूपमङ्गमुपार्जितम्॥४८॥

से रथ पर बैठा लिया। मन की भाँति वेग से चन्द्रमा ने अपने मनोहर रथ का संचालन किया और उस सुन्दरी को पकड़कर उसके साथ रमण किया॥३७-३८॥ पुष्पभद्रा नदी के तट पर देवों के विस्पन्दक नामक चन्दन वन, पुष्कर के किनारे, खिले हुए पुष्पों के उपवन में; पुष्प-चन्दन और वायु द्वारा सुगन्धित पुष्प की शय्या पर तथा मलय-पर्वत के बीच की निर्जन भूमि में स्निग्ध और चन्दनचर्चित पर्वतों, नदी और नदों में केलि करते उन दोनों के, हे नारद! सौ वर्ष का समय मुहूर्त (दो घड़ी) की भाँति व्यतीत हो गया॥३९-४१॥ अनन्तर (देवों से) भयभीत होकर चन्द्रमा दैत्यों और उन बलवानों के तेजस्वी गुरु शुक्र की शरण में गया॥४२॥ भृगुनन्दन (शुक्र) ने कृपा करके उसे अभय दान दिया और देवों के गुरु बृहस्पति की, जो उनके शत्रु हैं, हँसी उड़ाने लगे॥४३॥ उस सभा में बलोन्मत्त दैत्यों ने भी भीत और कलंकी चन्द्रमा को अभयदान देकर बृहस्पति की खिल्ली उड़ायी॥४४॥ सती स्त्री का सतीत्व नष्ट करने के कारण पापी चन्द्रमा के निर्मल मण्डल में कलंक मल स्वरूप ही शश (खरहे) का स्वरूप हो गया है। ॥४५॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ शुक्र ने महाभयभीत चन्द्रमा से उसके हित, सत्य, वेदानुसार और परिणाम में सुखप्रदायक वचन कहा॥४६॥

शुक्र बोले—अहो! तुम ब्रह्मा के पौत्र और भगवान् अत्रि महर्षि के पुत्र हो। हे पुत्र! तुम्हारा यह उद्दण्डकर्म नीचों की भांति है, कीर्तिकारी नहीं है॥४७॥ राजसूय यज्ञ के सुसम्पन्न करने पर उसके परिणामस्वरूप यह निर्मल कीर्तिमण्डल तुम्हें प्राप्त हुआ था, किन्तु सुधा-समूह में सुराबिन्दु के समान उसमें तुमने कलंक लगा ही लिया॥४८॥ मैं चाहता हूँ, देवगुरु बृहस्पति की पत्नी को तुम छोड़ दो।

---

१ क. ०सहस्रं तन्मु०।

त्यज देवगुरोः पत्नीं प्रसूमिव महासतीम। धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य ब्राह्मणानां बृहस्पतेः ॥४९॥
शंभोः सुराणामीशस्य गुरुपुत्रस्य वेधसः। पौत्रस्याऽऽङ्गिरसो नित्यं ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥५०॥
शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। इति सद्वंशजातानां स्वभावं च सतामपि ॥५१॥
स शत्रुर्मे सुरगुरुः परो विश्वे निशाकर। तथाऽपि सहजाख्यानं वर्णितं धर्मसंसदि ॥५२॥
यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः। यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥५३॥
गौरेकं पञ्च च व्याघ्री सिंही सप्त प्रसूयते। हिंसका प्रलयं यान्ति धर्मो रक्षति धार्मिकम् ॥५४॥
देवाश्च गुरवो विप्राः शक्ता यद्यपि रक्षितुम्। तथाऽपि नहि रक्षन्ति धर्मघ्नं पापिनं जनम् ॥५५॥
कुलटाविप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः। ब्रह्महत्याषोडशांशपातकं च भवेद्ध्रुवम् ॥५६॥
तासामुपस्थितानां च गमने तच्चतुर्थकम्। त्यागे धर्मो नास्ति पापमित्याह कमलोद्भवः ॥५७॥
विप्रपत्नीसतीनां च गमनं वै बलेन चेत्। ब्रह्महत्याशतं पापं भवेदेव श्रुतौ श्रुतम् ॥५८॥
धर्मं चर महाभाग ब्राह्मणीं त्यज सांप्रतम्। कृत्वाऽनुतापं पापाच्च निवृत्तिस्तु महाफला ॥५९॥
उपायेन च ते पापं दूरीभूतं[1] भवेन्ननु। शरणागतभीतस्य मयि देवस्य धर्मतः ॥६०॥

वह (तुम्हारी) जननी और महासती है। बृहस्पति भी अत्यन्त धर्मात्मा एवं ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं॥४९॥ देवों के अधीश्वर शिव हैं, उनके गुरुपुत्र ब्रह्मा हैं तथा उनके पौत्र और अंगिरा के पुत्र बृहस्पति हैं, जो ब्रह्मतेज से नित्य प्रज्वलित रहा करते हैं॥५०॥ शत्रु के भी गुणों को कहना चाहिए और गुरु के दोष भी। क्योंकि उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाले सज्जनों का ऐसा ही स्वभाव होता है॥५१॥ हे निशाकर! यद्यपि विश्व में देवगुरु बृहस्पति हमारे परम शत्रु हैं, तथापि इस धर्मसभा में ऐसा कहना स्वाभाविक है। क्योंकि जहाँ धर्मात्मा लोग रहते हैं वहाँ सनातन धर्म रहता है, जहाँ धर्म रहता है, वहाँ कृष्ण रहते हैं और जहाँ कृष्ण हैं विजय वहीं होती है॥५२-५३॥ गौ एक बच्चा उत्पन्न करती है, व्याघ्री पाँच और सिंहिनी सात उत्पन्न करती है (?), हिंसक नष्ट हो जाते हैं। अतः धर्म ही धार्मिक की रक्षा करता है। देववृन्द, गुरु और ब्राह्मण लोग यद्यपि रक्षा करने में समर्थ हैं तथापि धर्मनाशक पापी प्राणी की ये लोग रक्षा नहीं करते। कुलटा ब्राह्मणपत्नियों के साथ देवता या ब्राह्मण गमन करता है तो उन्हें ब्रह्महत्या का सोलहवाँ भाग पातक अवश्य लगता है और उन स्त्रियों के स्वयं उपस्थित होने पर उन्हें उसका चतुर्थांश भाग पातक लगता है॥५४-५६॥ उनका त्याग करने पर धर्म होता है न कि पाप, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है॥५७॥ और सती ब्राह्मणियों के साथ बलप्रयोग द्वारा उपभोग करने पर सौ ब्रह्महत्या का पापभागी होना पड़ता है, ऐसा वेद में निश्चित सुना है॥५८॥ इसलिये हे महाभाग! धर्माचरण करो, इस समय ब्राह्मणी को छोड़ दो। और जो पाप हो गया है, उसके लिए अनुताप (पश्चात्ताप) करो (जिससे उस पाप से निवृत्त हो जाओ), क्योंकि पापों से निवृत्त होना ही महाफल है॥५९॥ और अन्य किसी उपाय द्वारा भी तुम्हारा पाप निश्चित नष्ट हो सकता है। भयभीत होकर तुम देव होकर भी धर्मतः मेरी शरण

१क० तं करोम्यहम्।

शस्त्रहीनं च भीतं च दीनं च शरणार्थिनम्। यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम् ॥६१॥
राजसूयशतानां च रक्षिता लभते फलम्। परमेश्वरयुक्तश्च धर्मेण स भवेदिह ॥६२॥
इत्युक्त्वा वै दैत्यगुरुः स्वर्गे मन्दाकिनीतटे। स्नात्वा तं स्नापयामास विष्णुपूजां चकार सः ॥६३॥
विष्णुपादाब्जजातेन तन्नैवेद्यं शुभप्रदम्। गङ्गोदकेन पुण्येन भोजयामास चन्द्रकम् ॥६४॥
क्रोडे कृत्वा तु तं भीतं लज्जितं पापकर्मणा। कुशहस्तस्तमित्यूचे स्मारंस्मारं हरिं मुने ॥६५॥

शुक्र उवाच

यद्यस्ति मे तपः सत्यं सत्यं पूजाफलं हरेः। सत्यं व्रतफलं चैव सत्यं सत्यवचः फलम् ॥६६॥
तीर्थस्नानफलं सत्यं सत्यं दानफलं यदि। उपवासफलं सत्यं पापान्मुक्तो भवान्भवेत् ॥६७॥
विप्रं त्रिसंध्यहीनं च विष्णुपूजाविहीनकम्। तदाप्नोतु महाघोरं चन्द्रपापं सुदारुणम् ॥६८॥
स्वभार्यावञ्चनं कृत्वा यः प्रयाति परस्त्रियम्। स यातु नरकं घोरं चन्द्रपापेन पातकी ॥६९॥
वाचा वा ताडयेत्कान्तं दुःशीला दुर्मुखा च या। सा युगं चन्द्रपापेन यातु लालामुखं ध्रुवम् ॥७०॥
अनैवेद्यं वृथान्नं च यश्च भुङ्क्ते हरेर्द्विजः। स यातु कालसूत्रं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् ॥७१॥
अम्बुवीच्यां भूखननं यः करोति नराधमः। चन्द्रपापाद्युगशतं कालसूत्रं स गच्छतु ॥७२॥

आये हो अतः तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है, क्योंकि शस्त्र-रहित, भयभीत, दीन, शरणार्थी की जो रक्षा नहीं करता है, वह अधर्मी कुम्भीपाक नरक में निश्चित जाता है॥६०-६१॥ और रक्षा करने से उसे सौ राजसूय यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं तथा इस लोक में वह परम ऐश्वर्य से संयुक्त होकर धार्मिक होता है॥६२॥ इस प्रकार स्वर्ग में मन्दाकिनी नदी के तट पर दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने इतना कहकर स्वयं स्नान किया और उसे भी स्नान कराया एवं भगवान् विष्णु की पूजा की॥६३॥ तथा भगवान् विष्णु के चरण-कमल से निकले हुए गंगाजल और उनके पवित्र नैवेद्य से चन्द्रमा को भोजन कराया॥६४॥ हे मुने! पुनः उस भयभीत और पाप-कर्म से लज्जित चन्द्रमा को शुक्र ने अपनी गोद में बैठा कर उसके हाथ में कुश रखा और बार-बार भगवान् का स्मरण करके उससे कहा॥६५॥

शुक्र बोले—यदि हमारा तप सत्य है, हरि का पूजाफल सत्य है, व्रत का फल सत्य है, सत्य बोलने का फल सत्य है, तीर्थों का स्नान-फल सत्य है, दान का फल सत्य है और उपवास फल सत्य है, तो आप पापमुक्त हो जायँ॥६६-६७॥ तीनों काल की संध्याओं से रहित और भगवान् विष्णु की अर्चना से हीन रहने वाला ब्राह्मण चन्द्रमा के इस अति दारुण (भीषण) और महाघोर पाप का भागी हो॥६८॥ अपनी स्त्री को जो प्रवंचना (धूर्तता) से ठगकर परस्त्री से सम्भोग करता है, वह पापी चन्द्रमा के पाप से युक्त होकर घोर नरक में जाय॥६९॥ जो दुष्ट स्वभाव वाली कटुमुँही स्त्री वाणी द्वारा अपने पति को प्रताड़ित करती है, वह चन्द्रमा के पाप द्वारा लाला (लार) मुख नामक नरक में युगपर्यन्त निश्चित पड़ी रहे॥७०॥ जो द्विज भगवान् को भोग बिना लगाये उस व्यर्थ अन्न का भोजन करता है, वह चन्द्रमा के पाप से चारों युग पर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में जाकर रहे॥७१॥ अम्बुवीचीयोग में (जिसमें भूमि खोदना शास्त्रनिषिद्ध है) खोदने वाला नराधम चन्द्रपाप वश सौ युगों तक

स्वकान्तं वञ्चयित्वा च या याति परपूरुषम्। सा यातु वह्निकुण्डं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् ॥७३॥
कीर्तिं करोति रजसा परकीर्तिं विलुप्य च। स युगं चन्द्रपापेन कुम्भीपाकं च गच्छतु ॥७४॥
पितरं मातरं भार्यां यो न पुष्णाति पातकी। स्वगुरुं चन्द्रपापेन यातु चण्डालतां ध्रुवम् ॥७५॥
कुलटान्नमवीरान्नमृतुस्नातान्नमेव च। योऽश्नाति चन्द्रपापं च यातु तं पापिनं ध्रुवम् ॥७६॥
स यातु तेन पापेन कुम्भीपाकं चतुर्युगम्। तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोति पातकी ॥७७॥
दिवसे यो ग्राम्यधर्मं महापापी करोति च। यो गच्छेत्कामतः कामी गर्विणीं वा रजस्वलाम् ॥७८॥
तं यातु चन्द्रपापं च महाघोरं च पापिनम्। स यातु तेन पापेन कालसूत्रं चतुर्युगम् ॥७९॥
मुखं श्रोणीं स्तनं योनिं यः पश्यति परस्त्रियाः। कामतः कामदग्धश्च यातु तं चन्द्रकल्मषम् ॥८०॥
स यातु लालाभक्ष्यं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम्। तस्मादुत्तीर्य भवतु चाण्डालोऽन्धो नपुंसकः ॥८१॥
कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च। मांसं मसूरं लकुचं यश्च भुङ्क्ते [1]हरेर्दिने ॥८२॥
कुरुते ग्राम्यधर्मं च यातु तं चन्द्रकिल्विषम्। चतुर्युगं कालसूत्रं तेन पापेन गच्छतु ॥८३॥
तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोतु पातकी। सप्तजन्म महारोगी दरिद्रः कुब्ज एव च ॥८४॥

कालसूत्र नामक नरक में रहे ॥७२॥ जो स्त्री अपने पति को वञ्चित कर पर पुरुष के पास जाती है, वह चन्द्र-पाप से अग्निकुण्ड नामक नरक में चारों युग पर्यन्त रहे ॥७३॥ जो लोभवश दूसरे की कीर्ति लुप्त कर अपनी कीर्ति बढ़ाता है वह चन्द्र-पाप से एक युग पर्यन्त कुम्भीपाक नरक में जाकर रहे ॥७४॥ जो पुरुष अपने पिता, माता, स्त्री और गुरु का पालन-पोषण नहीं करता है, वह पापी चन्द्रपाप से निश्चित चाण्डाल हो जाये ॥७५॥ कुलटा, पतिपुत्रहीना और रजस्वला स्त्री का अन्न जो भोजन करता है, वह पापी चन्द्र पाप का भागी हो और उस पाप से चारों युगों तक कुम्भीपाक नरक में रहने पर अन्त में उस पातकी को चाण्डाल के यहाँ जन्म लेना पड़े ॥७६-७७॥ जो महापापी दिन में मैथुन करता है और काम-भावना से गर्भिणी अथवा रजस्वला स्त्री का उपभोग करता है वह पापी महाघोर चन्द्र-पाप का भागी होता है और उस पाप के नाते कालसूत्र नामक नरक में चारों युग पर्यन्त रहता है ॥७८-७९॥ जो कामी कामपीड़ित होकर परस्त्री के मुख, श्रोणीभाग और स्तन को देखता है, वह चन्द्रपाप का भागी होता है और उस पाप के कारण चारों युगों तक लालाभक्ष्य नामक नरक में पड़ा रहता है। पश्चात् चांडाल, अन्धा एवं नपुंसक होता है ॥८०-८१॥ चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति और अष्टमी तथा एकादशी या रविवार के दिन जो मांस, मसूर और बढ़हर खाता है तथा मैथुन करता है, वह चन्द्रपाप का भागी होता है और चारों युगपर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में रहता है ॥८२-८३॥ पुनः उसमें से निकल कर वह पातकी चाण्डाल-योनि में जाता है और सात जन्म तक रोगी, दरिद्र तथा कूबड़ा होता है ॥८४॥

---

१ ख. रवे०।

एकादश्यां च यो भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने । शिवरात्रौ महापापी यातु तं चन्द्रपातकम् ॥८५॥
स यातु कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश । तेन पापेन चाऽऽप्नोतु चाण्डालीं योनिमेव च ॥८६॥
ताम्रस्थं दुग्धमाध्वीकमुच्छिष्टं घृतमेव च । नारिकेलोदकं कांस्ये दुग्धं सलवणं तथा ॥८७॥
पीतशेषजलं चैव भुक्तशेषं तथौदनम् । असकृच्चौदनं भुङ्क्ते सूर्ये नास्तंगते द्विजः ॥८८॥
तं यातु चन्द्रपापं च दुर्निवारं च दारुणम् । स यातु तेन पापेन चान्धकूपं चतुर्युगम् ॥८९॥
स्वकन्याविक्रयी विप्रो देवलो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च तेषां वै सूपकारकः ॥९०॥
अश्वत्थतरुघाती च विष्णुवैष्णवनिन्दकः । तं यातु चन्द्रपापं च दारुणं पापिनं भृशम् ॥९१॥
स यातु तस्मात्पापाच्च तप्तसूर्मीं च पातकी । शश्वद्दग्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥९२॥
तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोतु पातकी । सप्तजन्मसु चाण्डालो [1]वृषभः पञ्चजन्मसु ॥९३॥
गर्दभो जन्मशतकं सूकरः सप्तजन्मसु । तीर्थध्वाङ्क्षः सप्तसु वै विट्कृमिः पञ्चजन्मसु
जलौका जन्मशतकं शुचिर्भवतु तत्परम् ॥९४॥
वृथामांसं च यो भुङ्क्ते स्वार्थं पाकान्नमेव च । तददत्तं महापापी प्राप्नुयाच्चन्द्रपातकम् ॥९५॥
स यातु चन्द्रपापेन चासिपत्रं चतुर्युगम् । ततो भवतु सर्पश्च पशुः स्यात्सप्तजन्मसु ॥९६॥

एकादशी, भगवान श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी तथा शिवरात्रि के दिन जो भोजन करता है वह महापापी चन्द्रपाप का भागी होता है ॥८५॥ तथा चौदहों इन्द्रों के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहता है। और उसी पाप के कारण चाण्डाल-योनि में उत्पन्न होता है ॥८६॥ तांबे के पात्र में दुग्ध, महुए की शराब, उच्छिष्ट घृत; काँसे के पात्र में नारियल का जल, लवण समेत दुग्ध, पीने से बचा हुआ जल, खाने से बचा हुआ भात और सूर्यास्त के पहले जो बार-बार भात खाता है, वह दुर्निवार एवं भीषण चन्द्रपाप का भागी होता है और उस पाप के कारण उसे अन्धकूप नरक में चारों युग पर्यन्त रहना पड़ता है ॥८७-८९॥ जो ब्राह्मण अपनी कन्या का विक्रय करता है, मन्दिर का पुजारी है, बैलों की सवारी करता है, शूद्रों के शव का दहन एवं उनके भोजन बनाने का काम करता है, पीपल का वृक्ष काटता है, विष्णु और वैष्णवों की निन्दा करता है, उस पापी को अति दारुण चन्द्रपाप लगता है ॥९०-९१॥ उस पाप के नाते वह पातकी, तप्तसूर्मी नामक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक निरन्तर दग्ध होता रहता है ॥९२॥ पुनः उसमें से निकलने पर वह पापी चाण्डाल-योनि प्राप्त कर सात जन्मों तक चाण्डाल, पाँच जन्मों तक बैल, सौ जन्मों तक गधा, सात जन्मों तक सूकर, सात जन्मों तक तीर्थ में काक, पाँच जन्मों तक विष्टा का कीड़ा और सौ जन्मों तक जोंक होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥९३-९४॥ जो व्यर्थ मांस भोजन करता है और बिना किसी को दिये अपने लिए अन्न पकाकर खाता है, वह महापापी चन्द्र-पाप का भागी होता है ॥९५॥ उस पाप के नाते उसे चारों युग पर्यन्त असिपत्र नामक नरक में रहना पड़ता है। पश्चात् वह सात जन्मों तक सर्प और पशु होता है ॥९६॥

---

१ क. वृषलः ।

विप्रो वार्धुषिको यो हि योनिजीवी चिकित्सकः। हरेर्नाम्नां च विक्रेता यश्च वा 'स्वाङ्गविक्रयी ॥९७॥
स्वधर्मकथकश्चैव यश्च स्वात्मप्रशंसकः। मषीजीवी धावकश्च कुलटापोष्य एव च ॥९८॥
तं यातु चन्द्रपापं च चन्द्रो भवतु विज्वरः। न यातु तेन पापेन शूलप्रोतं सुदारुणम् ॥९९॥
तत्र विद्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ततो दरिद्रो रोगी च दीक्षाहीनो नरः पशुः ॥१००॥
लाक्षामांसरसानां च तिलानां लवणस्य च। अश्वानां चैव लोहानां विक्रेता नरघातकः ॥१०१॥
विप्रः कुलालः चौरश्च यातु तं चन्द्रपातकम्। स यातु तेन पापेन क्षुरधारं सुदुःसहम् ॥१०२॥
तत्र च्छिन्नो भवतु स यावदिन्द्रसहस्रकम्। तस्मादुत्तीर्य स भवेत्सृगालः सप्तजन्मसु ॥१०३॥
सप्तजन्मसु मार्जारो महिषो जन्मपञ्चकम्। सप्तजन्मसु भल्लूकः कुक्कुरः सप्तजन्मसु ॥१०४॥
[2]मत्स्यश्च जन्मशतकं कर्कटी जन्मपञ्चकम्। गोधिका जन्मशतकं 'गर्दभः सप्तजन्मसु ॥१०५॥
सप्तजन्मसु मण्डूकस्ततः स्यान्मानवोऽधमः। चर्मकारश्च रजकस्तैलकारश्च वर्धकिः ॥१०६॥
नाविकः शबजीवी च व्याधश्च स्वर्णकारकः। कुम्भकारो लोहकारस्ततः क्षत्रस्ततो द्विजः ॥१०७॥
इति चन्द्रं शुचिं कृत्वा समुवाच स तारकाम्। त्यक्त्वा चन्द्रं महासाध्वि गच्छ कान्तमिति द्विजः ॥१०८॥

जो ब्राह्मण ब्याज लेता है, योनि द्वारा जीविका निर्वाह करता है, चिकित्सक है, भगवान् के नामों का विक्रेता है तथा अपना अंग विक्रय करता है, अपना धर्म कहता है, अपनी प्रशंसा करता है, स्याही से जीविका चलाता है, हरकारे का काम करता है, कुलटा स्त्री द्वारा पालित होता है, वह चन्द्रपाप का भागी हो और चन्द्रमा पाप से मुक्त हो जायँ। उस पापवश वह अति भीषण शूलप्रोत नामक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक उसमें छिद कर टंगा रहे, अनन्तर दरिद्र, रोगी और दीक्षाहीन नरपशु हो ॥९७-१००॥ लाख (लाह), मांस, रस, तिल, लवण (नमक) अश्व (घोड़े) और लोहे का विक्रेता, नरघाती तथा कुम्हार का कार्य करने वाला एवं चोरी करने वाला ब्राह्मण चन्द्रपाप का भागी हो। उस पाप से वह अतिदुःसह क्षुरधार नामक नरक में सहस्र इन्द्रों के समय तक छिन्न-भिन्न होता रहे। उसमें से निकलने पर वह सात जन्मों तक स्यार होता है। अनन्तर सात जन्मों तक बिलाड़, पाँच जन्मों तक भैंसा, सात जन्मों तक भालू सात जन्मों तक कुत्ता, सौ जन्मों तक मछली, पाँच जन्मों तक कर्कटी (केकड़ा), सौ जन्मों तक गोह, सात जन्मों तक गधा, सात-जन्मों तक मण्डूक (मेढक) होकर अनन्तर अधम मनुष्य होता है—चर्मकार (चमार), धोबी, तेली, बढ़ई, काछी, शवजीवी, व्याध, सोनार, कुम्हार लोहार के उपरान्त क्षत्रिय होकर पुनः ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होता है ॥१०१-१०७॥ इस भाँति चन्द्रमा को पवित्र करके शुक्र ने तारा से कहा—हे महासाध्वि! चन्द्रमा को छोड़कर तू अब अपने पति के पास चली जा ॥१०८॥ क्योंकि शुद्ध मन होने के नाते तू प्रायश्चित्त बिना ही शुद्ध है, कामहीन स्त्री बल-

---

१ क. यज्ञवि०। २ क. आखुश्च जन्मशतकं कुक्कुटी। ३ क.० गृध्रश्च स०।

प्रायश्चित्तं विना पूता त्वमेवं शुद्धमानसा । अकामा या बलिष्ठेन न स्त्री जारेण दुष्यति ॥१०९॥
इत्यवमुक्त्वा शुक्रश्च चन्द्रं वा तारकां सतीम् । सस्मितां सस्मितं चैव चकार च शुभाशिषः ॥११०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० ताराचन्द्रयोर्दोषनिवारणं
नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

बृहस्पतिः किं चकार तारकाहरणान्तरे । कथं संप्राप तां साध्वीं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

नारायण उवाच

दृष्ट्वा विलम्बं तारायाः स्नान्त्याश्चापि गुरुः स्वयम् । प्रस्थापयामास शिष्यमन्वेषार्थं च जाह्नवीम् ॥२॥
शिष्यो गत्वा च तद्वृत्तं ज्ञात्वा वै लोकवक्त्रतः । रुदन्नुवाच स्वगुरुं तारकाहरणं मुने ॥३॥
श्रुत्वा सुरगुरुर्वार्तां शशिना च प्रियां हृताम् । मुहूर्तं प्राप मूर्छां च ततः संप्राप्य चेतनाम् ॥४॥

वान् जार के द्वारा (दूषित होने पर भी) अदूषित ही रहती है ॥१०९॥ मुसकराते हुए चन्द्रमा तथा सती तारा को इस प्रकार कह कर शुक्र ने उन दोनों को शुभ आशीर्वाद प्रदान किया ॥११०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में तारा-चन्द्रमा का दोष-निवारण नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५८॥

अध्याय ५९

बृहस्पति की कैलास-यात्रा

नारद बोले—तारा का अपहरण हो जाने पर बृहस्पति ने क्या किया—उस पतिव्रता को उन्होंने कैसे प्राप्त किया? मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

श्री नारायण बोले—गुरु बृहस्पति ने स्नान के लिए गयी हुई तारा का विलम्ब जानकर स्वयं उसकी खोज के लिए जाह्नवी-तट पर एक शिष्य को भेजा ॥२॥ हे मुने! शिष्य ने वहाँ जाकर लोगों के मुख से वहाँ का समस्त वृत्तान्त सुना और वहाँ से लौट कर तारा का अपहरण अपने गुरु से रोदन करते हुए उसने कहा ॥३॥ देवगुरु बृहस्पति उससे सभी बातें जानकर कि—चन्द्रमा ने मेरी प्रियतमा का अपहरण कर लिया—मूर्च्छित हो गये। दो घडी के उपरान्त चेतना होने पर शिष्य समेत गुरु हार्दिक दुःख प्रकट करते हुए ऊँचे

रुरोदोच्चैः सशिष्यश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जयाऽऽविष्टो[1] विललाप मुहुर्मुहुः ॥५
उवाच शिष्यान्संबोध्य नीतिं च श्रुतिसंमताम् । साश्रुनेत्रः साश्रुनेत्राञ्छोकार्तः शोककर्शितान् ॥६॥

बृहस्पतिरुवाच

हे वत्साः केन शप्तोऽहं न जाने कारणं परम्। दुःखं धर्मविरुद्धो यः स प्राप्नोति न संशयः ॥७॥
यस्य नास्ति सती भार्या गृहेषु प्रियवादिनी। अरण्यं तेन गन्तव्यं[2] यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥८॥
भावानुरक्ता वनिता हृता यस्य च शत्रुणा। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥९॥
सुशीला सुन्दरी भार्या गता यस्य गृहादहो। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१०॥
दैवेनापहृता यस्य पतिसाध्या पतिव्रता। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥११॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१२॥
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१३॥
भार्याशून्या वनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः। गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते ॥१४॥
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥१५॥

स्वर से रोने लगे। शोक और लज्जा से उन्होंने बार-बार विलाप किया ॥४-५॥ अनन्तर वे शिष्यों को सम्बोधित कर वेद-सम्मत नीति कहने लगे। उस समय शिष्य-वर्ग भी आँखों में आँसू भरे शोकव्याकुल हो रहा था ॥६॥

बृहस्पति बोले—हे वत्स! मुझे किसने शाप दे दिया, मैं इस महान कारण को नहीं जानता हूँ। क्योंकि धर्म-विरोधी प्राणी को ही दुःख प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥७॥ जिसके गृह में पतिप्राणा एवं मधुर-भाषिणी स्त्री नहीं है, उसे (गृह त्यागकर) जंगल चला जाना चाहिए क्योंकि उसके लिए जंगल और गृह दोनों समान हैं ॥८॥ जिसकी प्रेमानुरागिणी स्त्री का शत्रु द्वारा अपहरण हो गया हो, उसे जंगल में निवास करना चाहिए, क्योंकि अरण्य और गृह दोनों उसके लिए समान हैं ॥९॥ अहो! जिसके घर से सुशीला एवं सुन्दरी पत्नी चली जाये, उसे (उसी समय) अरण्य चला जाना चाहिए; क्योंकि जंगल और घर उसके लिए दोनों समान हैं ॥१०॥ दैवसंयोगवश जिसकी पतिव्रता एवं पतिपरायणा स्त्री का अपहरण हो जाय उसे वन में चला जाना चाहिए, उसके लिए जैसे घर वैसे वन है ॥११॥ जिसके घर में माता नहीं है और सुशासित स्त्री नहीं है, उसे अरण्य और गृह दोनों समान होने के नाते वन चला जाना चाहिए ॥१२॥ जिसके घर में धनराशि एवं बन्धु वर्ग अधिक हैं, किन्तु प्रिया नहीं है उसे अरण्य चला जाना चाहिए क्योंकि उसके लिए घर और वन दोनों समान हैं ॥१३॥ स्त्री-शून्य गृह वन के समान है, जिस घर में स्त्री है वही गृह है, क्योंकि स्त्री ही घर है, केवल गृह को गृह नहीं कहा गया है ॥१४॥ इसलिए स्त्रीविहीन पुरुष देव एवं पितृ कर्मों में अपवित्र माना गया है और वह दिन में जो कुछ कर्म करता है, उसका फलभागी नहीं होता है ॥१५॥ जिस प्रकार दाहिका शक्ति से हीन अग्नि, प्रभा-

---

१ क. विप्रो। २ क. व्यं तयाऽरण्यं गृहाद्वरम्।

दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः। प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोभाहीनो यथा शशी ॥१६॥
शक्तिहीनो यथा जीवो यथा चाऽऽत्मा तनुं विना। विनाऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिं विना ॥१७॥
न च शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणां विना। कर्मणां च फलं दातुं सामग्री मूलमेव च ॥१८॥
विना स्वर्णं स्वर्णकारो यथाऽशक्तः स्वकर्मणि। यथाऽशक्तः कुलालश्च मृत्तिकां च विना द्विज ॥१९॥
तथा गृही न शक्तश्च संततं सर्वकर्मणि। गृहाधिष्ठातृदेवीं च स्वशक्तिगृहिणीं विना ॥२०॥
भार्यामूलाः[1] क्रियाः सर्वा भार्यामूला गृहास्तथा। भार्यामूलं सुखं सर्वं गृहस्थानां गृहे सदा ॥२१॥
भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलं च मङ्गलम्। भार्यामूलश्च संसारो भार्यामूलं च [2]सौरभम् ।२२॥
यथा रथश्च रथिनां गृहिणां च तथा गृहम्। सारथिस्तु यथा तेषां गृहिणां च तथा प्रिया ॥२३॥
सर्वरत्नप्रधानं च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि। गृहीता सा गृहस्थेनेवेत्याह कमलोद्भवः ॥२४॥
यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभां विना यथा। तथैव पुंसां स्वगृहं गृहिणां गृहिणीं विना ॥२५॥
इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः। गृहाद्बहिर्निःससार भूयो भूयः शुचाऽन्वितः ॥२६॥
मुहुर्मुहुश्च मूर्च्छां च चेतनां समवाप सः। भूयो भूयो रुरोदोच्चैः स्मारंस्मारं प्रियागुणान् ॥२७॥

हीन सूर्य, शोभाहीन चन्द्रमा, शक्तिहीन जीव, शरीर बिना आत्मा, आधार बिना आधेय, प्रकृति बिना ईश मन्द (शून्य) रहता है॥१६-१७॥ हे द्विज! जिस प्रकार फलदायक यज्ञ दक्षिणा बिना असमर्थ रहता है, यज्ञ की सामग्री और उसका मूल भाग कर्मों के फल प्रदान में असमर्थ होता है॥१८॥ एवं सोनार जिस प्रकार सुवर्ण के बिना अपने कर्म में अशक्त रहता है और मृत्तिका (मिट्टी) के बिना कुम्हार अपने कार्यों में असमर्थ रहता है उसी प्रकार गृहस्थ गृह की अधिष्ठात्री देवी एवं अपनी शक्ति रूप गृहिणी के बिना अपने सभी कर्मों में निरन्तर अशक्त रहता है॥१९-२०॥ क्योंकि जितनी क्रियायें हैं सभी स्त्री द्वारा आरम्भ होती हैं, सभी गृह स्त्री के कारण ही बनते हैं, इसलिए गृहस्थों को गृह में भी सुख स्त्री द्वारा ही प्राप्त होता है॥२१॥ सदा हर्ष भी स्त्री मूलक ही प्राप्त होता है, सभी मंगल स्त्री द्वारा होते हैं। इस भाँति सारा संसार स्त्री मूलक है। प्रसन्नता भी स्त्री द्वारा ही प्राप्त होती है। जिस प्रकार रथी का रथ होता है उसी प्रकार गृहस्थों का गृह होता है और रथ का संचालक सारथी जैसे होता है उसी भाँति गृहस्थों की संचालिका उसकी प्रिया पत्नी होती है॥२२-२३॥ इसलिए सभी रत्नों में स्त्रीरत्न प्रधान है। उसे दुष्कुल से भी गृहस्थों को ले लेना चाहिए, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है॥२४॥ जैसे बिना कमल का जल और बिना शोभा के कमल (हेय) होता है उसी भाँति गृही पुरुषों का गृह बिना गृहिणी का होता है॥२५॥ इतना कह कर गुरु बृहस्पति घर के भीतर चले गये और फिर घर से बाहर निकल आये। अधिक शोकमग्न होने के नाते उनका यही क्रम बना रहा। बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे और थोड़े समय में चेतना भी आ जाती थी। अपनी प्रिया के गुणों का बार-बार स्मरण करके उच्च स्वर से वे बार-बार रोदन करते थे॥२६-२७॥ अनन्तर महाज्ञानी बृहस्पति को उनके बड़े-बड़े शिष्यों

---

१ क. ०लाश्च पुत्राश्च भा०। २ क. यौवनम।

अथान्तरे महाज्ञानी ज्ञानिभिश्च प्रबोधितः । सच्छिष्यैर्मुनिभिश्चान्यैः पुरंदरगृहं ययौ ॥२८॥
स गुरुः पूजितस्तेन चाऽऽतिथ्येन मरुत्वता । तमुवाच स्ववृत्तान्तं हृदि शल्यमिवाप्रियम् ॥२९॥
बृहस्पतिवचः श्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः । तमुवाच महेन्द्रश्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥३०॥

महेन्द्र उवाच

दूतानां वै सहस्रं च चारकर्मणि गच्छतु । अतीव निपुणं दक्षं तत्त्वप्राप्तिनिमित्तकम् ॥३१॥
यत्रास्ति पातकी चन्द्रो मन्मात्रा तारया सह । गच्छामि तत्र संनद्धः सर्वैर्देवगणैः सह ॥३२॥
त्यज चिन्तां महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति । भद्रबीजं दुर्गमिदं कस्य संपद्विपद्विना ॥३३॥
इत्युक्त्वा च शुनासीरो दूतानां च सहस्रकम् । तूर्णं प्रस्थापयामास तत्कर्मनिपुणं मुने ॥३४॥
ते दूता वै वर्षशतं ययुर्निर्जनमेव च । [1]सुदुर्लङ्घ्यं च विश्वेषु भ्रमित्वा शक्रमाययुः ॥३५॥
चन्द्रं च शुक्रभवने तं प्रपन्नं च विज्वरम् । दृष्ट्वा सतारकं भीतं कथयामासुरीश्वरम् ॥३६॥
इति श्रुत्वा शुनासीरो नतवक्त्रो बृहस्पतिम् । उवाच शोकसंतप्तो हृदयेन विदूयता ॥३७॥

महेन्द्र उवाच

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम् । भयं त्यज महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३८॥

और अन्य महर्षियों ने भलीभाँति समझाया, जिससे वे सुरेन्द्र के घर गये ॥२८॥ इन्द्र ने उनकी अर्चना समेत आतिथ्य सत्कार किया और कुशल पूछा। गुरु ने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जो हृदय में शल्य (कील) की भाँति चुभनेवाला था ॥२९॥ बृहस्पति की बातें सुनकर इन्द्र के नेत्र रक्त कमल की भाँति रक्तवर्ण हो गये। क्रोध से अधरोष्ठ फड़काते हुए उन्होंने उनसे कहा ॥३०॥

महेन्द्र बोले—इस बात की खोज करने के लिए एक सहस्र गुप्तचर भेज रहा हूँ, जो अति निपुण एवं दक्ष होने के नाते इसके रहस्य का ठीक-ठीक पता लगायेंगे ॥३१॥ और मेरी माता तारा के साथ पापी चन्द्रमा जहाँ होगा, वहीं सर्म देवगणों के साथ तैयार होकर चल रहा हूँ ॥३२॥ हे महाभाग! आप चिन्ता त्याग दें, सब अच्छा ही होगा। यह विपत्ति कल्याण मूलक है क्योंकि बिना विपत्ति भोगे किसे सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥३३॥ हे मुने! इतना कहकर इन्द्र ने अतिशीघ्र एक सहस्र दूतों को भेज दिया, जो उस कर्म में अति निपुण थे ॥३४॥ वे दूतगण समस्त विश्व के अति दुर्लंघ्य और निर्जन स्थानों में उस रहस्य का पता लगाते हुए सौ वर्ष के उपरान्त लौटकर इन्द्र से मिले और कहने लगे—शुक्राचार्य के यहाँ चन्द्रमा सुखपूर्वक रह रहा है, तारा समेत भयभीत होकर वह उन्हीं की शरण में है—ऐसा दूतों ने इन्द्र से कहा ॥३५-३६॥ इसे सुनकर इन्द्र ने मुख नीचे कर लिया और शोक सन्तप्त होकर हार्दिक दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने बृहस्पति से कहा।

महेन्द्र बोले—हे नाथ! सुनिये मैं कह रहा हूँ, जो परिणाम में सुखप्रदायक होगा। हे महाभाग! आप भय छोड़ दें, अनन्तर सब कुछ अच्छा ही होगा। न तो आपने शुक्र को जीता और न मैंने दैत्य को जीता

---

१ क. °र्लभं च।

त्वया नहि जितः शुक्रो न मया दितिनन्दनः। एतदालोच्य चन्द्रश्च जगाम शरणं कविम् ॥३९॥
गच्छ शीघ्रं ब्रह्मलोकमस्माभिः सार्धमेव च। ब्रह्मणा सह यास्यामः [1]कैलासे शंकरं वयम् ॥४०॥
इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च संतप्तो गुरुणा सह। जगाम ब्रह्मलोकं च सुखदृश्यं निरामयम् ॥४१॥
तत्र दृष्ट्वा च ब्रह्माणं ननाम गुरुणा सह। प्रोवाच सर्ववृत्तान्तं देवानामीश्वरं परम् ॥४२॥
महेन्द्रवचनं श्रुत्वा हसित्वा कमलोद्भवः। हितं तथ्यं नीतिसारमुवाच विनयान्वितः ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

यो ददाति परस्मै च दुःखमेव च सर्वतः। तस्मै ददाति दुःखं च शास्ता कृष्णः सनातनः ॥४४॥
अहं स्रष्टा च सृष्टेश्च पाता विष्णुः सनातनः। यथा रुद्रश्च संहर्ता ददाति च शिवं शिवः ॥४५॥
निरन्तरं सर्वसाक्षी धर्मो वै सर्वकारणम्। सर्वे देवा विषयिणः कृष्णाज्ञापरिपालकाः ॥४६॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च जितेन्द्रियः। त्रयश्चाङ्गिरसः पुत्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥४७॥
संवर्ताय[2] कनिष्ठाय न च किंचिद्ददौ गुरुः। स बभूव तपस्वी च कृष्णं ध्यायति चेश्वरम् ॥४८॥
मध्यमस्योतथ्यकस्य सतीं भार्यां च गर्विणीम्। जहार कामतस्तां च भ्रातृजायामकामुकीम् ॥४९॥
यो हरेद्भ्रातृजायां च कामी कामादकामुकीम्। ब्रह्महत्यासहस्रं च लभते नात्र संशयः ॥५०॥

यही सोचकर चन्द्रमा कवि शुक्र की शरण में गया है ॥३७-३९॥ इसलिए हमलोगों के साथ आप शीघ्र ब्रह्मलोक चलें और ब्रह्मा को साथ लेकर हमलोग शिवजी के यहाँ चलेंगे ॥४०॥ इतना कहकर महेन्द्र सन्तप्त होते हुए गुरु को साथ लिये ब्रह्मलोक गये, जो देखने में सुखप्रद और निरामय था ॥४१॥ वहाँ ब्रह्मा को देखकर गुरु समेत उन्होंने उन्हें नमस्कार किया और देवों के परमेश्वर उन ब्रह्मा को समस्त वृत्तान्त कहकर सुनाया ॥४२॥ महेन्द्र की बातें सुनकर कमल से उत्पन्न होने वाले विनययुक्त ब्रह्मा ने हँस कर उनसे कहा, जो हित, तथ्य एवं नीति का सार था ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—जो दूसरे को दुःख पहुँचाता है, उसे सनातन भगवान् श्रीकृष्ण शासक होने के नाते स्वयं दुःख देते हैं ॥४४॥ मैं सृष्टि का स्रष्टा हूँ, सनातन विष्णु उसकी रक्षा करते हैं, रुद्र संहार करते हैं और शिव (कल्याण) प्रदान करते हैं। धर्म समस्त के साक्षी एवं निरन्तर सब के कारण हैं, इस प्रकार सभी देवगण अपने-अपने विषय में भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करते हैं ॥४५-४६॥ बृहस्पति, उतथ्य और जितेन्द्रिय संवर्त, ये तीन पुत्र अंगिरा से उत्पन्न हुए जो वेद-वेदांग के पारगामी थे ॥४७॥ अंगिरा ने कनिष्ठ (छोटे) पुत्र संवर्त को कुछ नहीं दिया, वह तपस्वी हो गया, परमेश्वर श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करता है ॥४८॥ मध्यम (मझला) पुत्र उतथ्य की पतिव्रता पत्नी का, जो उस समय गर्भिणी एवं कामभावनाहीन तथा भाई की पत्नी थी, इन्होंने कामवश अपहरण कर लिया। जो कामी कामवश भाई की कामभावनाहीन पत्नी का अपहरण करता है, उसे सहस्र ब्रह्महत्या का पाप लगता है, इसमें संशय नहीं ॥४९-५०॥ उसे

---

१ क. ०कैलासं शंकरालयम्। २ क. कुशिष्याय।

स याति कुम्भीपाकं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भ्रातृजायापहारी च मातृगामी भवेन्नरः ॥५१॥
तस्मादुत्तीर्य पापी च विष्ठायां जायते कृमिः। वर्षकोटिसहस्राणि तत्र स्थित्वा च पातकी ॥५२॥
ततो भवेन्महापापी वर्षकोटिसहस्रकम्। पुंश्चलीयोनिगर्ते च कृमिश्चैव पुरंदर ॥५३॥
गृध्रःकोटिसहस्राणि शतजन्मानि कुक्कुरः। भ्रातृजायापहरणाच्छतजन्मानि सूकरः ॥५४॥
ददाति यो न दायं च बलिष्ठो दुर्बलाय च। स याति कुम्भीपाकं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५५॥
ना ऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥५६॥
जगद्गुरोः शिवस्यापि गुरुपुत्रो बृहस्पतिः। ज्ञातं करोतु वृत्तान्तमीश्वरं बलिनां वरम् ॥५७॥
सर्वे समूहा देवानां संनद्धाश्च सवाहनाः। मध्यस्था मुनयश्चैव सन्तु वै नर्मदातटे ॥५८॥
पश्चादहं च यास्यामि पुण्यं तं नर्मदातटम्। गुरुस्तद्गुरुपुत्रोऽपि शीघ्रं यातु शिवालयम् ॥५९॥

महेन्द्र उवाच

कथं वा वेदकर्तुश्च सिद्धानां योगिनां गुरोः। मृत्युंजयस्य शंभोश्च गुरुपुत्रो बृहस्पतिः ॥६०॥
अङ्गिरास्तव पुत्रश्च तत्पुत्रश्च बृहस्पतिः। त्वत्तो ज्ञानी महादेवः कथं शिष्यो गुरोः पितुः ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

कथेयमतिगुप्ता च पुराणेषु पुरंदर। इमां पुराप्रवृत्तिं च कथयामि निशामय ॥६२॥

चन्द्र-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ता है, क्योंकि भाई की स्त्री का अपहरण करनेवाला मनुष्य मातृगामी कहलाता है ॥५१॥ उपरान्त वहाँ से निकलकर वह पापी विष्ठा का कीड़ा होता है, सहस्रों करोड़ वर्ष तक उसमें रहकर वह पातकी महापापी होता है। हे पुरन्दर! पश्चात् पुंश्चली (व्यभिचारिणी) स्त्री की योनि के गड्ढे का कीड़ा होता है ॥५२-५३॥ अनन्तर सहस्र करोड़ वर्ष गीध, सौ जन्मों तक कुत्ता और भाई की पत्नी का अपहरण करने के नाते सौ जन्मों तक सूकर होता है ॥५४॥ एवं जो बलवान् पुरुष अपने दुर्बल भाई को उसका दाय भाग (हिस्सा) नहीं देता है, उसे चन्द्र-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ता है ॥५५॥ क्योंकि सैकड़ों करोड़ कल्प बीत जाने पर भी बिना उपभोग किये कर्म नष्ट नहीं होता है, अतः अपना किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म अवश्य भोगना पड़ता है ॥५६॥ बृहस्पति जगद्गुरु शिव के गुरुपुत्र हैं, इसलिए बलवानों में श्रेष्ठ उन ईश्वर को यह वृत्तान्त बता देना चाहिए ॥५७॥ समस्त देववृन्द अपने वाहन समेत तैयार होकर नर्मदा के तटपर चलें और मुनिगण वहाँ मध्यस्थ रहेंगे, पीछे उस पुण्य नर्मदा तट पर हम भी आ रहे हैं। गुरुपुत्र (बृहस्पति) भी कैलाश जायँ ॥५८-५९॥

महेन्द्र बोले—वेदों के प्रणेता, सिद्धों और योगियों के गुरु एवं मृत्युञ्जय शिव के गुरुपुत्र बृहस्पति कैसे हुए? क्योंकि अंगिरा तुम्हारे पुत्र हैं और उनके पुत्र बृहस्पति हैं और महादेव तुम से श्रेष्ठ ज्ञानी हैं अतः गुरु के पिता के शिष्य कैसे हुए? ॥६०-६१॥

ब्रह्मा बोले—हे पुरन्दर! यह कथा पुराणों में अति गुप्त है। अतः मैं इस प्राचीन कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ॥६२॥?

मृतवत्सा कर्मदोषाद्भार्या चाङ्गिरसः पुरा । व्रतं चकार मद्वाक्यात्कृष्णस्य परमात्मनः ॥६३॥
व्रतं पुंसवनं नाम वर्षमेकं चकार सा । सनत्कुमारो भगवान्कारयामास तां व्रतम् ॥६४॥
तदाऽऽगत्य च गोलोकात्परमात्मा कृपामयः । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६५॥
सुव्रतां च सलक्ष्मीकां तामुवाच कृपानिधिः । प्रणतां साश्रुनेत्रां च विनीतां च तया स्तुतः ॥६६॥

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाणेदं [1]व्रतफलं मम तेजः समन्वितम् । भुङ्क्ष्व मद्वरतः पुत्रो भविष्यति मदंशतः ॥६७॥
पतिर्गुरुश्च देवानां महतां ज्ञानिनां वरः । पुत्रस्ते भविता साध्वि मद्वरेण बृहस्पतिः ॥६८॥
मद्वरेण भवेद्यो हि स च मद्वरपुत्रकः । त्वद्गर्भे मम पुत्रोऽयं चिरजीवी भविष्यति ॥६९॥
वरजो वीर्यजश्चैव क्षेत्रजः पालकस्तथा । विद्यामन्त्रसुतौ चैव गृहीतः सप्तमः सुतः ॥७०॥
इत्युक्त्वा राधिकानाथः स्वलोकं च जगाम सः । श्रीकृष्णवरपुत्रोऽयं ज्ञानी सुरगुरुः स्वयम् ॥७१॥
मृत्युंजयं महाज्ञानं शिवाय प्रददौ पुरा । दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपश्चक्रे हिमालये ॥७२॥

पहले समय में अंगिरा की पत्नी कर्म दोषवश मृतवत्सा थी (उसके बच्चे छोटी अवस्था में मर जाते थे)। उसने परमात्मा श्रीकृष्ण का व्रत किया ॥६२-६३॥ भगवान् सनत्कुमार ने एक वर्ष तक उससे पुंसवन नामक व्रत सविधि सम्पन्न कराया, जिससे उस समय दयामय एवं परमात्मा श्रीकृष्ण ने, जो कृपानिधि, स्वेच्छामय, परब्रह्म एवं भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले हैं, गोलोक से आकर उस लक्ष्मीमूर्ति सुव्रता से कहा, जो विनय-विनम्र, आँखों में आँसू भरे स्तुति कर रही थी ॥६४-६६॥

श्रीकृष्ण बोले—हे पुत्रि ! इस व्रत-फल को ग्रहण करो, जो मेरे तेज से युक्त है। इसका भक्षण कर लो, मेरे वरदान द्वारा मेरे अंश से पुत्र उत्पन्न होगा। जो देवों का पति और गुरु तथा बड़े-बड़े ज्ञानियों में श्रेष्ठ होगा। हे साध्वि ! मेरे वरदान द्वारा तुम्हारे बृहस्पति पुत्र उत्पन्न होगा ॥६७-६८॥ मेरे वरदान द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरा वरपुत्र कहलायेगा। अतः तुम्हारे गर्भ में जो मेरा पुत्र होगा, वह चिरजीवी होगा ॥६९॥ वरदान से उत्पन्न; वीर्य से उत्पन्न, क्षेत्र से उत्पन्न पालक, विद्या एवं मंत्र जन्य दो पुत्र और सातवाँ यह बृहस्पति पुत्र है ॥७०॥ इतना कहकर राधिका-नाथ भगवान् श्रीकृष्ण अपने लोक चले गये। अतः भगवान् श्रीकृष्ण का यह वर (दान जन्य) पुत्र है, जो ज्ञानीश्वर, और स्वयं गुरु है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मृत्यु जीतने वाला महाज्ञान पहले शिव जी को दिया था। उन्होंने हिमालय पर तीन लाख दिव्य वर्ष तक तप किया, जिससे भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना योग, सम्पूर्ण ज्ञान, अपने समान तेज, अपनी शक्ति विष्णुमाया, और अपना अंश वृष वाहन रूप में दिया तथा अपना शूल, अपना कवच, अपना द्वादशाक्षर मंत्र भी

---

१ क. ०व्रतानशनक्षीणां ता०। २ क. यज्ञफ०।

स्वयोगं ज्ञानमखिलं तेजः स्वात्मसमं परम्। स्वशक्तिं विष्णुमायां च स्वांशं वै वाहनं वृषम् ॥७३॥
स्वशूलं च स्वकवचं स्वमन्त्रं द्वादशाक्षरम्। कृपामयः स्तुतस्तेन श्रीकृष्णश्च परात्परः ॥७४॥
शिवलोके शिवा सा च विष्णुमाया शिवप्रिया। शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ॥७५॥
तेजःसु सर्वदेवानां साऽऽविर्भूता सनातनी। जघान दैत्यनिकरं देवेभ्यः प्रददौ पदम् ॥७६॥
कल्पान्ते दक्षकन्या च सा मूलप्रकृतिः सती। पितृयज्ञे तनुं त्यक्त्वा योगाद्वै सिद्धयोगिनी ॥७७॥
बभूव शैलकन्या सा साध्वी वै भर्तृनिन्दया। कालेन कृष्णतपसा शंकरं प्राप शंकरी ॥७८॥
श्रीकृष्णो हि गुरुः शंभोः परमात्मा परात्परः। कृष्णस्य वरपुत्रोऽयं स्वयमेव बृहस्पतिः ॥७९॥
अतो हेतोः सुरगुरुर्गुरुपुत्रः शिवस्य च। इत्येवं कथितं सर्वमतिगुह्यं पुरातनम् ॥८०॥
इति प्रधानसंबन्धः श्रुतश्च कथितो मया। पारम्परिकमन्यं च कथयामि निशामय ॥८१॥
दुर्वासा गरुडश्चैव शंकरांशः प्रतापवान्। शिष्यौ चाङ्गिरसस्तौ द्वौ गुरुपुत्रोऽथवा ततः ॥८२॥
प्राणाधिकायां सत्यां च मृतायां दक्षशापतः। स्वज्ञानं स्वं च भगवान्विससस्मार स्वमोहतः ॥८३॥
स्मरणं कारयामास कृष्णेन प्रेरितोऽङ्गिराः। अतो हेतोर्गुरुश्चैवं[1] मत्सुतः स्याच्छिवस्य सः ॥८४॥
शीघ्रं गच्छतु कैलासं स्वयमेव बृहस्पतिः। त्वं गच्छ तत्र संनद्धः सदेवो नर्मदातटम् ॥८५॥

प्रदान किया। अनन्तर शिव ने कृपामय एवं परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की। शिवलोक (कैलास) में विष्णु की माया शिवजी की प्रिया शिवा होकर रहने लगी। वह नारायण की सनातनी शक्ति है। उस सनातनी ने समस्त देवों के तेज से प्रकट होकर समस्त दैत्य-वृन्दों का संहार किया और देवों को उनके अपने-अपने पद पर प्रतिष्ठित किया। वही मूल प्रकृति कल्पान्त में दक्ष की कन्या सती होकर अवतीर्ण हुई, जिसने पिता के यज्ञ में पति की निन्दावश योग द्वारा अपना शरीर त्याग कर हिमालय की कन्या होकर जन्म ग्रहण किया। वही पतिव्रता शंकरी अधिक काल तक भगवान् कृष्ण का तप करके शंकर जी को प्राप्त हुई है। अतः परात्पर एवं परमात्मा श्रीकृष्ण शंकर जी के गुरु हैं। बृहस्पति स्वयमेव भगवान् श्रीकृष्ण के वरदत्त पुत्र हैं, इसी कारण देवगुरु (बृहस्पति) शिवजी के गुरुपुत्र हैं। इस प्रकार मैंने अति गुह्य एवं प्राचीन कथा तथा प्रधान सम्बन्ध जो सुना था, तुम्हें सुना दिया। परम्परा प्राप्त अन्य कथा भी सुना रहा हूँ, सुनो ॥७१-८१॥ दुर्वासा और गरुड़ ये दोनों प्रतापी शंकर जी के अंश हैं और अंगिरा के शिष्य हैं। इस प्रकार भी बृहस्पति शिवजी के गुरुपुत्र हैं तथा दक्ष के शापवश प्राणप्रिया सती के मर जाने पर भगवान शिव मोहवश अपना ज्ञान और स्वयं अपने को भूल गये थे, भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेरित होकर अंगिरा ने उन्हें पुनः उसका स्मरण कराया था। इसीलिए मेरे पुत्र अंगिरा शिवजी के गुरु हैं, अतः स्वयं बृहस्पति केवल कैलास जायें। और तुम देवों के साथ तैयार होकर नर्मदा तट पर चलो। हे नारद!

---

१ क. ०रुरिव शिवस्य मत्सुतस्य च।

इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च नारद। गुरुर्ययौ च कैलासं मन्द्रेन्द्रो नर्मदातटम् ॥८६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० बृहस्पतेः कैलासगमनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग। निपीतं च सुधाख्यानं त्वन्मुखेन्दुविनिःसृतम् ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि किमुवाच बृहस्पतिः। शिवं च गत्वा कैलासं दातारं सर्वसंपदाम् ॥२॥
जगत्कर्ता विधाता च किंवा तं प्रत्युवाच सः। एतत्सर्वं समालोच्य वद वेदविदां वर ॥३॥

नारायण उवाच

शीघ्रं गत्वा च कैलासं भ्रष्टश्रीः शंकरं गुरुः। प्रणम्य तस्थौ पुरतो [1]लज्जामलिनविग्रहः ॥४॥
दृष्ट्वा गुरुसुतं शंभुरुदतिष्ठत्कुशासनात्। आलिङ्गनं ददौ तस्मै शीघ्रं माङ्गलिकाशिषः ॥५॥
स्वासने वासयित्वा वै पप्रच्छ कुशलं वचः। उवाच मधुरं वाक्यं भीतं तं लज्जितं शिवः ॥६॥

जगत् के विधाता ब्रह्मा इतना कहकर चुप हो गये। अनन्तर गुरु कैलास गये और महेन्द्र नर्मदा तट पर पहुँचे ॥८२-८६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक दुर्गोपाख्यान में बृहस्पति का कैलास-गमन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

अध्याय ६०

तारा के उद्धार का उपाय-कथन

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! आप वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान् हैं, आपके मुखचन्द्र से निकले हुए आख्यान रूप अमृत का मैंने यथेच्छ पान किया ॥१॥ सम्प्रति मैं यही सुनना चाहता हूँ कि बृहस्पति ने कैलास जाकर समस्त सम्पत्ति के प्रदाता शिव जी से क्या कहा ॥२॥ और जगन्नियन्ता एवं रचयिता शिव जी ने उन्हें क्या उत्तर दिया। हे वेदविदों में श्रेष्ठ! यह सब बातें भलीभाँति विचार कर मुझे बताने की कृपा करें ॥३॥

नारायण बोले—श्रीहत गुरु बृहस्पति ने शीघ्र कैलास जाकर शंकर को प्रणाम किया और लज्जा से कन्धा झुकाये उन्हीं के सामने बैठ गये ॥४॥ अनन्तर शिव ने गुरुपुत्र बृहस्पति को सामने देख कर तुरन्त कुशासन से उठ कर उनका आलिंगन किया और मांगलिक शुभाशिष प्रदान किया ॥५॥ शिव जी ने उन्हें अपने आसन पर बैठा कर जो भयभीत और लज्जित हो रहे थे, मधुर शब्दों में उनसे कुशल पूछा ॥६॥

---

१ ख. ०ज्ज.वनतकन्धरः।

शंकर उवाच

कथमेवंविधस्त्वं च दुःखी मलिनविग्रहः। साश्रुनेत्रो लज्जितश्च भ्रातस्तत्कारणं वद ॥७॥
किंवा तपस्या हीना ते संध्या हीनाऽथवा मुने। किंवा श्रीकृष्णसेवा सा विहीना दैवदोषतः ॥८॥
किंवा गुरौ भक्तिहीनोऽभीष्टदेवेऽथवा हरौ। किंवा न रक्षितुं शक्तः प्रपन्नं शरणागतम् ॥९॥
किंवाऽतिथिस्ते विमुखः किंवा पोष्या बुभुक्षिताः। किंवा स्वतन्त्रा स्त्री वा ते किंवा पुत्रोऽवचस्करः ॥१०॥
सुशासितो न शिष्यो वा किं भृत्याश्चोत्तरप्रदाः। किंवा ते विमुखा लक्ष्मीः किंवा रुष्टो गुरुस्तव ॥११॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च शश्वत्संतुष्टमानसः। गुरुस्तव वसिष्ठश्च प्रेष्ठः श्रेष्ठः सतामहो ॥१२॥
किंवा रुष्टोऽभीष्टदेवः किंवा रुष्टाश्च वाडवाः। किंवा रुष्टा [1]वैष्णवाश्च किंवा ते प्रबलो रिपुः ॥१३॥
किंवा ते बन्धुविच्छेदो विग्रहो बलिना सह। किंवा पदं परग्रस्तं किंवा बन्धुधनं च वा ॥१४॥
केन ते वा कृता निन्दा खलैर्वा पापिभिर्मुने। केन वा त्वं परित्यक्तो बान्धवेन प्रियेण वा ॥१५॥
बन्धूस्त्यक्तस्त्वया किंवा वैराग्येण क्रुधाऽथवा। किंवा तीर्थे नहि स्नातं न दत्तं पुण्यवासरे ॥१६॥
गुरुनिन्दा बन्धुनिन्दा खलवक्त्राच्छ्रुताऽथवा। गुरुनिन्दा हि साधूनां मरणादतिरिच्यते ॥१७॥
असद्वंशप्रजातानां खलानां निन्दनं तथा। दौःशील्यमेवमसतां शश्वन्नारकिणामिह ॥१८॥

श्रीशंकर बोले—हे भ्रातः! इस भाँति तुम दुःखी और मलिन शरीर आँखों में आँसू भरे तथा लज्जित क्यों हो रहे हो, उसका कारण कहो। हे मुने! क्या तुम्हारी तपस्या नहीं हो पायी या सन्ध्यारहित हो गये? अथवा दैवदोषवश भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा नहीं कर पाये? या अभीष्ट देव या गुरु की भक्ति से विहीन हो गए या किसी शरण-प्राप्त की रक्षा नहीं कर पाये?॥७-९॥ या तुम्हारे यहाँ से अतिथि निराश होकर चला तो नहीं गया? या तुम्हारे पोष्य वर्ग भूखे तो नहीं हैं? क्या तुम्हारी स्त्री स्वतन्त्र हो गयी? या पुत्र तुम्हारा कहना नहीं मानता?॥१०॥ या शिष्य सुशासित नहीं है? सेवक वर्ग ने कहीं उत्तर तो नहीं दे दिए हैं? क्या लक्ष्मी विमुख होकर चली गयी? क्या गुरु तुम पर रुष्ट हो गए?॥११॥ हे निरन्तर सन्तुष्ट रहने वाले! तुम गौरवपूर्ण और श्रेष्ठ हो, अहो तुम्हारे गुरु वशिष्ठ जी सज्जनों में अति श्रेष्ठ और बड़े हैं॥१२॥ क्या अभीष्ट देव रुष्ट हो गए हैं या ब्राह्मणवर्ग रुष्ट है? या वैष्णव लोग रुष्ट हो गए हैं? या तुम्हारा शत्रु प्रबल हो गया है? या बन्धु-वियोग हो गया है? या बलवान् के साथ युद्धारम्भ हो गया है? या तुम्हारा पद या बन्धुओं का धन दूसरे के अधीन हो गया है?॥१३-१४॥ हे मुने! अथवा किसी पापी दुष्ट ने तुम्हारी निन्दा की है? या प्रिय बन्धु ने तुम्हारा त्याग कर दिया है? या तुम्हीं ने वैराग्य अथवा क्रोधवश बन्धु-त्याग कर दिया है या तीर्थ में स्नान नहीं किया अथवा पुण्य अवसर पर दान नहीं दिया?॥१५-१६॥ या दुष्टों के मुख से गुरु या बन्धुओं की निन्दा तो नहीं सुनी? क्योंकि गुरुनिन्दा साधु स्वभाव वाले को मरण से भी अधिक दुःखप्रद होती है॥१७॥ असत्कुल में उत्पन्न दुष्ट स्वभाव वाले प्राणियों का, जो निरन्तर नरक-सेवन करते हैं, निन्दा करना स्वभाव ही होता है॥१८॥ भारत में पुण्यात्मा सन्त लोग दूसरे की प्रशंसा ही करते हैं, इसीलिए

---

१ क बान्धवा०।

परप्रशंसकाः सन्तः पुण्यवन्तो हि भारते। शश्वन्मङ्गलयुक्ताश्च राजन्तेऽमलमानसाः ॥१९॥
पुत्रे यशसि तोये च समृद्धे च पराक्रमे। ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु च ॥२०॥
वचनेषु च बुद्धौ च स्वभावे च चरित्रतः। आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२१॥
यादृग्येषां च हृदयं तादृक्तेषां च मङ्गलम्। यादृग्येषां पूर्वपुण्यं तादृक्तेषां च मानसम् ॥२२॥
इत्युक्त्वा च महादेवो विरराम स्वसंसदि। तमुवाच महावक्ता स्वयमेव बृहस्पतिः ॥२३॥

बृहस्पतिरुवाच

अकथ्यमेव वृत्तान्तं कथयामि किमीश्वर। लोकाः कर्मवशा नित्यं नानाजन्मसु यत्कृतम् ॥२४॥
स्वकर्मणां फलं भुङ्क्ते जन्तुर्जन्मनि जन्मनि। नहि नष्टं च तत्कर्म विना भोगाच्च भारते ॥२५॥
सुखं दुःखं भयं शोको नराणां यत्कृतं प्रभो। केचिद्वदन्ति हि भवेत्स्वकृतेन च कर्मणा ॥२६॥
केचिद्वदन्ति दैवेन स्वभावेनेति केचन। त्रिविधा गतयो ह्यस्य वेदवेदाङ्गपारग ॥२७॥
स्वयं च कर्मजनकः कर्म वै दैवकारणम्। स्वभावो जायते नृणां स्वात्मनः पूर्वकर्मणः ॥२८॥
स्वकर्मणा च सर्वेषां जन्तूनां प्रतिजन्मनि। सुखं दुःखं भयं शोकः स्वात्मनश्च प्रजायते ॥२९॥
स्वकर्मफलभोक्ता च जीवो हि सगुणः सदा। आत्मा भोजयिता साक्षी निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥३०॥
स एवाऽऽत्मा सर्वसेव्यः सर्वेषां च फलप्रदः। स वै सृजति दैवं च स्वभावं कर्म चैव हि ॥३१॥

निरन्तर मंगल युक्त होकर सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं ॥१९॥ क्योंकि पुत्र, यश, जल, धन, पराक्रम, ऐश्वर्य, प्रताप, प्रजा, भूमि, धन, वचन, बुद्धि, स्वभाव, चरित्र, आचार और व्यवहार में मनुष्यों का हृदय स्वयं प्रवृत्त होता है ॥२०-२१॥ इसलिए जिन लोगों के हृदय में जितनी शुद्धता रहती है, उतना ही उन्हें मंगल प्राप्त होता है और पूर्व का (किया हुआ) जिनका जैसा पुण्य रहता है वैसा उनका मन होता है ॥२२॥ इस प्रकार अपनी सभा में कह कर महादेव चुप हो गये। अनन्तर महावक्ता बृहस्पति जी स्वयं कहने लगे ॥२३॥

बृहस्पति बोले—हे ईश्वर! यद्यपि मेरा समाचार कहने योग्य नहीं है, तथापि कहूँगा ही। कर्म के अधीन प्राणी अनेक जन्मों में जो कुछ कर्म करता है, अपने कर्मों के फल उसे प्रत्येक जन्म में भोगने पड़ते हैं। क्योंकि भारत में बिना उपभोग किए कर्म नष्ट नहीं होता है ॥२४-२५॥ हे प्रभो! कुछ लोगों का कहना है कि भारत में मनुष्यों के सुख, दुःख, भय एवं शोक अपने किए कर्म वश होते हैं, कोई कहते हैं कि दैव वश और कुछ लोग कहते हैं कि स्वभावतः होते हैं॥ हे वेद-वेदांग के पारगामी (विद्वान्)! इस प्रकार इसकी तीन प्रकार की गतियाँ बतायी गयी हैं ॥२६-२७॥ प्राणी जो स्वयं कर्म करता है, वही कर्म दैव का कारण होता है और मनुष्यों का स्वभाव उसके पूर्व जन्म के कर्मानुसार ही होता है ॥२८॥ इस प्रकार सभी प्राणियों को प्रत्येक जन्म में उसके पूर्वजन्मकृत कर्मानुसार ही सुख, दुःख, भय एवं शोक होता है ॥२९॥ अपना कर्म फल भोगने के लिए जीव सदा सगुण रहता है, और आत्मा भोग कराने वाला, साक्षी, निर्गुण और प्रकृति से परे है ॥३०॥ इसीलिए वह आत्मा सभी के सेवन करने योग्य है। वही सब को फल प्रदान करता है, वही दैव (भाग्य), स्वभाव और कर्म का

कर्मणा च नृणां लज्जा प्रशंसा च प्रफुल्लता। लज्जाबीजं च वृत्तान्तं तथाऽपि कथयामि ते ॥३२॥
इत्युक्त्वा सर्ववृत्तान्तमवोचत्तं बृहस्पतिः। श्रुत्वा बभूव नम्रास्यो गौरीशो लज्जया तदा ॥३३॥
जपमाला कराद्भ्रष्टा कोपाविष्टस्य शूलिनः। बभूव सद्यः कम्पश्च रक्तपङ्कजलोचने ॥३४॥
संहर्तुरीशो रुद्रस्य विष्णोः पातुः सखा शिवः। स्रष्टुः स्तुत्यश्च मान्यश्च स्वात्मनः परमा गतिः ॥३५॥
निर्गुणस्य च कृष्णस्य प्रकृतीशस्य नारद। कोपात्प्रवक्तुमारेभे शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥३६॥

शिव उवाच

शिवमस्तु च साधूनां वैष्णवानां सतामिह। अवैष्णवानामसतामशिवं च पदे पदे ॥३७॥
ददाति वैष्णवेभ्यश्च यो दुःखं सुस्थितो जनः। श्रीकृष्णस्तस्य संहर्ता विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥३८॥
अवैष्णवानां हृदयं नहि शुद्धं सदामलम्। श्रीकृष्णमन्त्रस्मरणं मनोनैर्मल्यकारणम् ॥३९॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः विष्णुमन्त्रोपासनया क्षीयते कर्म तन्नृणाम् ॥४०॥
अहो श्रीकृष्णदासानां कः स्वभावः सुनिर्मलः। हृतभार्यं मूर्च्छितश्च न शशाप रिपुं गुरुः ॥४१॥
गुरुर्यस्य वरिष्ठश्च क्रोधहीनश्च धार्मिकः। शतपुत्रघ्नमप्येनं न शशाप रिपुं मुनिः ॥४२॥
निःश्वासाद्वै सुरगुरोर्भ्रातुर्मम बृहस्पतेः। भस्मीभूतो निमेषेण शतचन्द्रो भवेद्ध्रुवम् ॥४३॥

सर्जन करता है ॥३१॥ इसलिए मनुष्यों को कर्मानुसार ही लज्जा, प्रशंसा और प्रफुल्लता (प्रसन्नता) प्राप्त होती है। हमारा समाचार लज्जाजनक है, किन्तु मैं आप से कह ही रहा हूँ ॥३२॥ इतना कह कर बृहस्पति ने उन्हें अपना वृत्तान्त सुना दिया, जिसे सुन कर गौरी के प्राणेश्वर शिव ने उसी समय लज्जित होकर नीचे मुख कर लिया ॥३३॥ अनन्तर क्रुद्ध होने पर शिव के हाथ से जपमाला गिर पड़ी और नेत्र रक्त कमल की भाँति लाल हो गये और वे स्वयं काँपने लगे ॥३४॥ हे नारद! शिव जी संहर्त्ता रुद्र के ईश, पालन करने वाले विष्णु के सखा, सर्जन करने वाले (ब्रह्मा) के स्तुत्य और मान्य तथा स्वात्मभूत, निर्गुण एवं प्रकृति के ईश श्रीकृष्ण की परम गति हैं। कोप के नाते शिव जी का कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गया। अनन्तर उन्होंने कहना आरम्भ किया ॥३५-३६॥

शिव बोले—साधुओं, वैष्णवों एवं सज्जनों का कल्याण हो और अवैष्णव असज्जनों का पग-पग पर अशुभ हो ॥३७॥ जो प्राणी अच्छी स्थिति में रह कर वैष्णवों को दुःख देता है, उसका संहार भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं करते हैं और पद-पद पर उसका अशुभ होता है ॥३८॥ जो वैष्णव नहीं है उसका हृदय शुद्ध नहीं रहता है, सदा मल से भरा रहता है; क्योंकि मन के निर्मल होने में भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र का स्मरण करना ही कारण कहा गया है ॥३९॥ भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना करने से मनुष्यों के हृदय की ग्रन्थि नष्ट हो जाती है, समस्त सन्देह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और कर्मों का क्षय हो जाता है ॥४०॥ अहो! भगवान् श्रीकृष्ण के दासों का स्वभाव कैसा निर्मल होता है कि स्त्री के अपहरण हो जाने पर गुरु (बृहस्पति) मूर्च्छित हो गए, किन्तु उस शत्रु को उन्होंने शाप नहीं दिया ॥४१॥ जिसके गुरु श्रेष्ठ, क्रोधरहित और धार्मिक हैं उस मुनि ने सैकड़ों पुत्रों के हनन करने वाले के समान होते हुए भी उस शत्रु को शाप नहीं दिया ॥४२॥ यद्यपि हमारे भाई देव गुरु बृहस्पति के निःश्वास से निमेष (पलक) मात्र में सैकड़ों चन्द्रमा निश्चित भस्म हो सकते हैं, तथापि धर्म-भंग होने के भय से इन्होंने उसे शाप नहीं दिया।

तथाऽपि तं नो शशाप धर्मभङ्गभयेन च। तपस्या हीयते शप्तुः कोपाविष्टस्य नित्यशः ॥४४॥
अहो ह्यत्रेरसत्पुत्रः परस्त्रीलुब्धकः शठः। तपस्विनो वैष्णवस्य ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः ॥४५॥
धर्मिष्ठा ब्रह्मणः पुत्रा वैष्णवा ब्राह्मणास्तथा। केचिद्देवा द्विजा दैत्याः पौत्राश्च त्रिविधा मताः ॥४६॥
ये सात्त्विका ब्राह्मणास्ते देवा राजसिकास्तथा। दैत्यास्तामसिका रौद्रा बलिष्ठाश्चोद्धताः सदा ॥४७॥
स्वधर्मनिरता विप्रा नारायणपरायणाः। शैवाः शाक्ताश्च ते देवा दैत्याः पूजाविवर्जिताः ॥४८॥
मुमुक्षवो विष्णुभक्ता ब्राह्मणा दास्यलिप्सवः। ऐश्वर्यलिप्सवो देवाश्चासुरास्तामसास्तथा ॥४९॥
ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कृष्णस्यार्चनमीप्सितम। निष्कामानां निर्गुणस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥५०॥
ये ब्राह्मणा वैष्णवाश्च स्वतन्त्राः परमं पदम्। यान्त्यन्योपासकाश्चान्यैः सार्धं च प्राकृते लये ॥५१॥
वर्णानां ब्राह्मणाः श्रेष्ठाः साधवो वैष्णवा यदि। विष्णुमन्त्रविहीनेभ्यो द्विजेभ्यः श्वपचो वरः ॥५२॥
परिपक्वा विपक्वा वा वैष्णवाः साधवश्च ते। सततं पाति तांश्चैव विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥५३॥
यथा वह्नौ शुष्कतृणं भस्मीभूतं भवेत्सदा। तथा पापं वैष्णवेषु तेजस्विषु हुताशनात् ॥५४॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रवेक्ष्यति। तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५॥
पुंसां शतं पितॄणां च शतं मातामहस्य च। स्वसोदरांश्च जननीमुद्धरन्त्येव वैष्णवाः ॥५६॥

क्योंकि क्रुद्ध होकर जो शाप देते हैं उनकी तपस्या नित्यशः न्यून होती चली जाती है ॥४३-४४॥ अहो! तपस्वी, वैष्णव ब्रह्मा के पुत्र एवं धीमान् महर्षि अत्रि के असज्जन, परस्त्री-लोभी और शठ पुत्र-हो आश्चर्य है ॥४५॥ ब्रह्मा के पुत्र धार्मिक, वैष्णव एवं ब्राह्मण हुए हैं तो कुछ देवता, कुछ ब्राह्मण एवं दैत्य तीन प्रकार के उनके पौत्र हैं ॥४६॥ उनमें सात्त्विक जो हैं वे ब्राह्मण हैं, देव लोग राजसिक (रजोगुण प्रधान) और दैत्य गण तामसी हुए, जो सदा भीषण, बलवान् तथा उद्धत होते हैं ॥४७॥ ब्राह्मणगण अपने धर्म में लगे हुए नारायण का सतत चिन्तन करते हैं, देवगण शैव और शाक्त होते हैं और दैत्यगण पूजाहीन होते हैं ॥४८॥ विष्णु के भक्त वैष्णव गण मुमुक्षु (मोक्ष के इच्छुक) होते हैं, ब्राह्मण (भगवान के) दास होने की इच्छा रखते हैं; देवगण ऐश्वर्य के इच्छुक और असुरगण तामसी होते हैं ॥४९॥ निष्काम ब्राह्मणों का अपना धर्म है—भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चा करना जो निर्गुण और प्रकृति से भी परे हैं ॥५०॥ जो ब्राह्मण वैष्णव होते हैं वे स्वतन्त्र होकर परमपद प्राप्त करते हैं और अन्य की उपासना करने वाले भी प्राकृत लय के समय अन्य के साथ परम पद प्राप्त कर लेते हैं ॥५१॥ वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं यदि वे साधु एवं वैष्णव हों। क्योंकि भगवान विष्णु के मन्त्र से रहित ब्राह्मणों से श्वपच (चाण्डाल) कहीं श्रेष्ठ होता है ॥५२॥ वैष्णव एवं साधु ब्राह्मण भक्ति में परिपक्व हों या अपक्व, विष्णु का चक्र सुदर्शन उन सब की रक्षा करता ही है ॥५३॥ जिस प्रकार अग्नि में सूखा तृण सदा भस्म हो जाता है, उसी तरह तेजस्वी वैष्णवों में अग्नि से पाप नष्ट हो जाते हैं ॥५४॥ जिसके कान में गुरु के मुख से निकला हुआ विष्णु-मन्त्र प्रवेश करता है, विद्वद्वृन्द उसे महापवित्र वैष्णव कहते हैं ॥५५॥ वैष्णव लोग पितरों (पूर्वजों) की सौ पीढ़ी, मातामह (नाना) की सौ पीढ़ी तथा अपने सहोदरों और माता का उद्धार करते हैं ॥५६॥ गया में पिण्डदान करने वाले केवल पिण्ड-

गयायां पिण्डदानेन पिण्डदाः पिण्डभोजिनः। समुद्धरन्ति पुंसां च वैष्णवाश्च शतं शतम् ॥५७॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। यमस्तस्मान्महाभीतो वैनतेयादिवोरगः ॥५८॥
पुनन्त्येव हि तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते। कृष्णमन्त्रोपासकाश्च स्पर्शमात्रेण वाक्पते ॥५९॥
पापानि पापिनां तीर्थे यावन्ति प्रभवन्ति च। नश्यन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः ॥६०॥
कृष्णमन्त्रोपासकानां रजसा पादपद्मयोः। सद्यो मुक्ताः पातकेभ्यः कृत्स्ना पूता वसुंधरा ॥६१॥
वायुश्च पवनो वह्निः सूर्यः सर्वं पुनाति च। एते पूता वैष्णवानां स्पर्शमात्रेण लीलया ॥६२॥
अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम्। एते हृष्टाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम् ॥६३॥
फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत्। न भवेत्तद्वैष्णवे च [1]स्विन्नधान्ये यथाऽङ्कुरम् ॥६४॥
हन्ति तेषां कर्म पूर्वं भक्तानां भक्तवत्सलः। कृपया स्वपदं तेभ्यो ददात्येव कृपानिधिः ॥६५॥
तेजस्विनां च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम्। स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रं च शरणं ययौ ॥६६॥
सुदर्शनो बलिष्ठं च शुक्रं जेतुं न शक्तिमान्। तथाऽपि चोद्धरिष्यामि तारां मन्त्रेण यद्गुरोः ॥६७॥
भज सत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। सुप्रसन्ने भगवति पत्नीं प्राप्स्यसि लीलया ॥६८॥

भोजियों का ही उद्धार करते हैं किन्तु वैष्णवगण सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार करते हैं ॥५७॥ केवल मन्त्रग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, गरुड़ से सर्प की भाँति उससे यम भी महाभयभीत होता है ॥५८॥ हे वाक्पते! भारत में गंगादि तीर्थ नदियाँ स्नान करने पर पुनीत करती हैं, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के मंत्र की उपासना करने वाले (वैष्णव) केवल स्पर्शमात्र से पवित्र करते हैं ॥५९॥ तीर्थ में पापियों के जितने पाप उत्पन्न होते हैं, वे सभी पाप वैष्णव के स्पर्शमात्र से नष्ट हो जाते हैं ॥६०॥ भगवान् कृष्ण के मन्त्र की उपासना करने वालों के चरण-कमल के रज से यह समस्त पृथ्वी पातकों से तुरन्त मुक्त होकर पवित्र हो जाती है ॥६१॥ यद्यपि वायु, पवन, अग्नि और सूर्य सभी को पुनीत करते हैं किन्तु ये सब वैष्णवों के लीलास्पर्श मात्र से पवित्र हो जाते हैं ॥६२॥ मैं, ब्रह्मा, शेष, और धर्म जो कर्मों के साक्षी हैं, ये सभी अति हर्षित होकर वैष्णवों के समागम की नित्य अभिलाषा रखते हैं ॥६३॥ यद्यपि भारत में सभी को कर्मानुरूप ही फल प्राप्त होता है, किन्तु सिद्ध (पकाये) धान्य में अंकुर न होने की भाँति वैष्णवों को वैसा कर्मफल प्राप्त नहीं होता है ॥६४॥ क्योंकि भक्तवत्सल एवं कृपानिधान भगवान् सर्वप्रथम भक्तों के पूर्व जन्म के कर्मों का नाश कर देते हैं, पश्चात् कृपया अपना पद प्रदान करते हैं ॥६५॥ वह दुर्बल चन्द्रमा भयभीत होकर तेजस्विजनों में श्रेष्ठ एवं वैष्णव भृगुनन्दन शुक्र की शरण में गया है ॥६६॥ यद्यपि (भगवान् का) सुदर्शन चक्र बली शुक्र को जीतने में सशक्त नहीं है, तथापि अपने गुरु (भगवान् कृष्ण) के मंत्र द्वारा मैं तारा का उद्धार करूँगा ॥६७॥ भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करो, जो सत्यमूर्ति, परब्रह्म एवं ईश्वर हैं। भगवान् के सुप्रसन्न होने पर तुम्हें पत्नी अनायास प्राप्त हो जायगी ॥६८॥ हे भ्रातः! मैं तुम्हें उन्हीं का मन्त्र दे रहा हूँ, जो परम कल्पतरु-रूप है।

---

१ ख. सिद्धा०।

मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजन्माघनिघ्नं च सर्वमङ्गलकारणम् ॥६९॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं नश्वरं जलबिन्दुवत् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानमीश्वरम् ॥७०॥
तावद्भवेच्छा भोगेच्छा स्त्रीसुखेच्छा नृणामिह । यावद्गुरुमुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः ॥७१॥
संप्राप्य दुर्लभं मन्त्रं वितृष्णो हि भवेन्नरः । इन्द्रत्वममरत्वं च नहि वाञ्छन्ति वैष्णवाः ॥७२॥
नहि वाञ्छन्ति मोक्षं च दास्यभक्तिं विना हरेः । भक्तिनिर्मथनं भक्तो मोक्षं नो वाञ्छति प्रभोः ॥७३॥
ज्ञानं मृत्युंजयत्वं च सर्वसिद्धिं तदीप्सितम् । वाक्सिद्धिं चैव धातृत्वं भक्तानां नहि वाञ्छितम् ॥७४॥
भक्तिं विहाय कृष्णस्य विषयं यो हि वाञ्छति । विषमत्ति सुधां त्यक्त्वा वञ्चितो विष्णुमायया ॥७५॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कपिलश्च कुमारश्च नरनारायणावृषी ॥७६॥
स्वायंभुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः । भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराः ॥७७॥
बलिश्च बालखिल्याश्च वरुणश्च हुताशनः । वायुः सूर्यश्च गरुडो दक्षो गणपतिः स्वयम् ॥७८॥
एते परा भक्तवराः कृष्णस्य परमात्मनः । ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्भक्तिपरायणाः ॥७९॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ कल्पतरुं मनुम् । लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं मुने ॥८०॥
परं पूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं तथा । तत्पुरश्चरणं ध्यानं शुद्धे मन्दाकिनीतटे ॥८१॥
गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शंकराच्च जगद्गुरोः । वितृष्णो हि भवाब्धौ च बभूव तमुवाच ह ॥८२॥

करोड़ों जन्म का पाप नष्ट करता है तथा समस्त मंगलों का कारण है ॥६९॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी जल-बिम्ब के समान नश्वर हैं, अतः गोविन्द की शरण में जाओ, जो परमात्मा एवं ईश्वर हैं। मनुष्यों को तभी तक संसारी इच्छा,—भोग की इच्छा और स्त्री-सुख की इच्छा होती है जब तक गुरु के मुख-कमल से भगवान् का मंत्र प्राप्त नहीं कर लेता है। क्योंकि उस दुर्लभ मन्त्र के प्राप्त होने पर मनुष्य को कोई इच्छा ही नहीं होती है ॥७०-७१॥ इसलिए वैष्णव लोग भगवान् की दास्य-भक्ति के बिना इन्द्रत्व, अमरत्व नहीं चाहते हैं और मोक्ष भी नहीं चाहते हैं ॥७२॥ भक्त भगवद्भक्ति का विनाशक मोक्ष भी नहीं चाहता तथा ज्ञान, मृत्युंजयत्व, अभीष्ट सर्व सिद्धियाँ, वाक्सिद्धि और ब्रह्मा होना भी भक्तों को अभीष्ट नहीं है। क्योंकि भगवान् की भक्ति का त्याग कर जो विषय की अभिलाषा करता है वह (मानों) विष्णु की माया से वंचित होने के नाते सुधा त्याग कर विष भक्षण करता है। ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, अनन्त कश्यप, कपिल, कुमार, नर-नारायण ऋषि, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, पराशर, भृगु, शुक्र, दुर्वासा, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, बलि, बालखिल्य, वरुण, अग्नि, वायु, सूर्य, गरुड़, दक्ष और गणपति, ये परमात्मा श्रीकृष्ण के श्रेष्ट भक्त हैं ॥७३-७८॥ एवं जो लोग उनकी श्रेष्ट कला (अंश) रूप हैं, वे उनकी भक्ति में निरत रहते हैं। हे मुने! इतना कहकर शंकर जी ने भगवान् का कल्पवृक्ष तुल्य मंत्र 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः,' उत्तम पूजाविधान, स्तोत्र और कवच गुरु-पुत्र को प्रदान किया ॥७९-८०॥ हे मुने! शुद्ध मन्दाकिनी-तट पर जगद्गुरु शिव द्वारा पुरश्चरणपूर्वक ध्यान एवं मंत्र प्राप्त कर बृहस्पति ने संसार-सागर से खिन्नता प्रकट करते हुए शिव से कहा ॥८१-८२॥

बृहस्पतिरुवाच

आज्ञां कुरु जगन्नाथ यामि तपः हरेस्तपः। तारा तिष्ठतु तत्रैव न तया मे प्रयोजनम् ॥८३॥
पश्यामि विषतुल्यं च सर्वं नश्वरमीश्वर। श्रीकृष्णं शरणं यामि सत्यं नित्यं च निर्गुणम् ॥८४॥

महादेव उवाच

परग्रस्तां स्त्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने। संभावितस्य दुश्चर्चा मरणादतिरिच्यते ॥८५॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेतं नर्मदातटम्। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सत्वरम् ॥८६॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम्। आययौ च महाभागः शंकरो नर्मदातटम् ॥८७॥
सगणं शकरं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्। प्रणेमुर्देवताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा ॥८८॥
ननाम शंभुः शिरसा विष्णुं च कमलोद्भवम्। ददतुस्तौ महेशाय [1]प्रेम्णाऽऽलिङ्गनमासनम् ॥८९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्च बृहस्पतिः। प्रणनाम महादेवं विष्णुं च कमलोद्भवम् ॥९०॥
सूर्यं धर्ममनन्तं च नरं मां च मुनीश्वरान्। स्वगुरुं पितरं भक्त्या चावसत्तत्र संसदि ॥९१॥
संचिन्त्य मनसा युक्तिमूचे तत्र च संसदि। स्वयं विष्णुश्च भगवान्ब्रह्माणं चन्द्रशेखरम् ॥९२॥

बृहस्पति बोले—हे जगन्नाथ! मुझे आज्ञा प्रदान करें, मैं भगवान् का तप करने जा रहा हूँ, और अब तारा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, अतः वह वहीं रहे ॥८३॥ क्योंकि हे ईश्वर! संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर होने के नाते मुझे विष के समान दिखाई दे रही हैं। इसीलिए मैं भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाना चाहता हूँ, जो सत्य, नित्य और निर्गुण हैं ।८४॥

श्री महादेव बोले—हे मुने! शत्रु के अधीन पड़ी हुई स्त्री को त्याग कर तप करने जाना अच्छा नहीं, क्योंकि सम्भावित दुश्चर्चा (अयश) मरण से अधिक दुःखप्रद होती है ॥८५॥ हे महाभाग! इसलिए तुम आगे चलो, मैं भी नर्मदा-तट पर, जहाँ ब्रह्मा आदि सभी देव हैं, शीघ्र ही चल रहा हूँ ॥८६॥ शिव की बातें सुनकर देव-गुरु बृहस्पति नर्मदा-तट की ओर चल पड़े और महाभाग शंकर भी वहाँ पहुँच गये ॥८७॥ अपने गण समेत शिव को वहाँ आये हुए देख कर, जिनके मुख और नेत्र से प्रसन्नता स्पष्ट प्रतीत हो रही थी, समस्त देवता, मनु और मुनियों ने सादर प्रणाम किया ॥८८॥ शिव ने भी विष्णु और ब्रह्मा को शिर से नमस्कार किया। अनन्तर विष्णु ने शिव से प्रेमालिंगन कर उन्हें आसन प्रदान किया ॥८९॥ उसी बीच वहाँ बृहस्पति भी आ गये। उन्होंने महादेव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, धर्म, अनन्त, नर-नारायण, मुनिवृन्द, अपने गुरु और पिता को भक्तिपूर्वक सादर प्रणाम किया, और वहीं बैठ गये ॥९०-९१॥ अनन्तर वहाँ की सभा में भगवान् विष्णु ने मन से भलीभांति युक्ति सोच कर ब्रह्मा और शिव से स्वयं कहा ॥९२॥

---

१ क. ०म्णा मङ्गलमाशिषम्।

विष्णुरुवाच

युवां च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं द्रुतम् । शुक्रं[1] कविं च मध्यस्थं प्रस्थापयितुमर्हथ ॥९३॥
विग्रहेणैव विषमं भविष्यति न संशयः । मदाशिषा सुरगुरुस्तारां प्राप्स्यति निश्चितम् ॥९४॥
सुरैः स्तुतश्च संतुष्टः शुक्राचार्यो भविष्यति । सुरैः शुक्रो हि न जितः कृष्णचक्रेण रक्षितः ॥९५॥
युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं युवयोः स्तवनेन च । श्वेतद्वीपादागतोऽस्मि परितुष्टः स्तवेन च ॥९६॥
[2]शुक्राश्रमसमीपं तु सर्वा गच्छन्तु देवताः । रिपुर्बलिष्ठः स्तोत्रेण वशीभूत इति श्रुतिः ॥९७॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तत्रैवान्तरधीयत । स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः प्रणतैः परिपूजितः ॥९८॥
गते च जगतां नाथे श्वेतद्वीपं च नारद । चिन्तिताश्च सुराः सर्वे विषण्णमनसस्तथा ॥९९॥
मुनीन्देवांश्च संबोध्य ब्रह्मा वै तत्र संसदि । उवाच नीतिसारं तत्संमतं शंकरस्य सः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच

मम शंभोश्च धर्मस्य विष्णोर्वा सर्वसाक्षिणः । अस्माकं च समः स्नेहो दैत्ये देवे च पुत्रकाः ॥१०१॥
दैत्यानां च गुरुं शुक्रं प्रपन्नश्च निशाकरः । न जितश्च सुरैः शुक्रः पूजितो दितिनन्दनैः ॥१०२॥

विष्णु बोले—तुम दोनों और मुनिवृन्द मिलकर समुद्रतट पर शुक्राचार्य के यहाँ किसी को मध्यस्थ बनाकर शीघ्र भेजो। क्योंकि युद्ध करने से विषम परिणाम होगा, इसमें संशय नहीं। और मेरे आशीर्वाद से बृहस्पति तारा को निश्चित प्राप्त करेंगे ॥९३-९४॥ इसलिए देवलोग शुक्राचार्य की स्तुति करके उन्हें सन्तुष्ट करें, क्योंकि कृष्ण-चक्रसुदर्शन द्वारा रक्षित होने के नाते शुक्र को देवलोग भी जीत नहीं सकते हैं ॥९५॥ तुम लोगों की प्रार्थना-स्तुति से प्रसन्न होकर मैं श्वेत द्वीप से यहाँ आया हूँ। अतः शुक्र के आश्रम के पास सभी देवता जायें। क्योंकि श्रुति कहती है कि बलवान् शत्रु को उसकी स्तुति द्वारा वशीभूत करना चाहिए ॥९६-९७॥ इतना कहकर जगत् के नाथ भगवान् विष्णु ब्रह्मादि देवों द्वारा प्रणाम, स्तुति तथा अर्चना करने के उपरान्त उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ॥९८॥ हे नारद! जगदीश्वर भगवान् विष्णु के श्वेतद्वीप चले जाने पर सभी देवता खिन्नमन होकर चिन्ता-कुल हो उठे। उसी बीच सभा में मुनियों और देवों को सम्बोधित करते हुए ब्रह्मा ने कहा, जो नीति का सार और शंकर को पसन्द था ॥९९-१००॥

ब्रह्मा बोले—हे पुत्रवृन्द! मेरा, शिव का, धर्म का एवं सबके साक्षी विष्णु का देवों और दैत्यों में समान स्नेह रहा है ॥१०१॥ और दैत्यों के गुरु शुक्र के यहाँ चन्द्रमा रह रहा है, तथा दैत्यगणों से पूजित होने के नाते शुक्र को देवगण कभी जीत नहीं पाये ॥१०२॥ इसलिए हे देवगण! विष्णु की आज्ञानुसार तुम लोग समुद्रतट पर चलो

१क. ०क्रं कंचिच्च म०। २ ख. ०ममसीपर्णं स०।

ताराहेतोरहं यामि शुक्रस्य भवनं सुराः । सर्वे समुद्रपुलिनं यान्तु विष्णोर्निदेशतः ॥१०३॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता चागमच्छुक्रसंनिधिम् । प्रययुर्देवता विप्राः समुद्रपुलिनं मुने ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० श्रीकृष्णोपदिष्टतारोद्धरणोपाय-ज्ञानं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

ततः परं किं रहस्यं बभूवासुरदेवयोः । श्रोतुमिच्छामि भगवन्परं कौतूहलं मम ॥१॥

नारायण उवाच

ब्रह्मा जगाम निलयं शुक्रस्य च महात्मनः । नानादैत्यगणाकीर्णं रत्नमण्डपभूषितम् ॥२॥
पञ्चाशत्कोटिभिः शिष्यैः परीतं ब्रह्मवादिभिः । सप्तभिः परिखाभिश्च वेष्टितं दुर्गमेव च ॥३॥
रक्षितं रक्षकगणैर्दैत्यैश्च शतकोटिभिः । पद्मरागैर्विरचितैः प्रावारैः परिशोभितम् ॥४॥
ददर्श जगतां धाता सभायां भृगुनन्दनम् । स्तुतं मुनिगणैर्दैत्यै रत्नसिंहासनस्थितम् ॥५॥

और तारा के लिए मैं अकेला शुक्र के भवन में जा रहा हूँ ॥१०३॥ हे मुने ! इतना कहकर जगत् के धाता (ब्रह्मा) शुक्र के पास गये और देवगण एवं ब्राह्मण-वृन्द ने समुद्र-तट की यात्रा की ॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत श्री कृष्णोपदिष्ट तारा के उद्धार का उपाय ज्ञान नामक साठवाँ अध्याय समाप्त। ॥६०॥

अध्याय ६१

बृहस्पति को तारा की प्राप्ति तथा बुध की उत्पत्ति

नारद बोले—हे भगवन् ! उसके पश्चात् दैत्यों और देवों में क्या हुआ? यह रहस्य सुनने का मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥१॥

नारायण बोले—ब्रह्मा महात्मा शुक्र के भवन गये जो अनेक भाँति के दैत्यों से आच्छन्न एवं रत्नों के मण्डपों से विभूषित था ॥२॥ पचास करोड़ ब्रह्मवेत्ता शिष्य उनके चारों ओर वर्तमान थे और उनका दुर्ग सात परिखाओं (खाइयों) से घिरा था ॥३॥ सौ करोड़ दैत्य रक्षकगण दुर्ग की रक्षा करते थे और वह दुर्ग पद्मराग मणियों की बनी चहारदीवारों से सुशोभित था ॥४॥ उपरान्त जगत् के विधाता ब्रह्मा ने वहाँ भृग-पुत्र शुक्र को देखा जो दैत्यों तथा मुनिगणों द्वारा स्तुत और रत्नसिंहासन पर सुखासीन थे ॥५॥ परब्रह्म, परमात्मा

जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। कोटिसूर्यप्रभं शश्वज्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६॥
दृष्ट्वा पौत्रं प्रभायुक्तं विधाता हृष्टमानसः। आत्मानं कृतिनं मेने पुत्रं पौत्रं च नारद ॥७॥
दृष्ट्वा पितामहं शुक्रो धातारं जगतां प्रभुम्। उत्थाय सहसा भीतः प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥८॥
आदाय पूजयामास चोपचारांस्तु षोडश। तुष्टाव परया भक्त्या संभ्रमेण यथागमम् ॥९॥
विद्यामन्त्रप्रदातारं दातारं सर्वसंपदाम्। स्वकर्मणां च फलदं सर्वेषां विश्वतो वरम् ॥१०॥
शुक्रस्य स्तवनेनैव संतुष्टो जगतां पतिः। अवरुह्य [1]रथात्तूर्णमवसत्तत्र संसदि ॥११॥
शुक्रेण शिरसो दत्तरत्नसिंहासने वरे। तेजसा ज्वलिते रम्ये निर्मिते विश्वकर्मणा ॥१२॥
शुक्रः प्रणम्य ब्रह्माणं कुमारं सनकं क्रतुम्। वसिष्ठं च मरीचिं च सनन्दं च सनातनम् ॥१३॥
कपिलं वै पञ्चशिखं वोढुमङ्गिरसं मुने। धर्मं मां च नरं भक्त्या प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥१४॥
प्रत्येकं पूजयामास सादरं च यथोचितम्। सिंहासनेषु रम्येषु वासयामास धार्मिकः ॥१५॥
प्रहृष्टवदना सर्वे प्रणेमुर्दितिनन्दनाः। ऋषिसंघाश्च धातारं तुष्टुवुश्च यथागमम् ॥१६॥
सर्वान्संस्तूय स कविरवोचत्संपुटाञ्जलिः। साश्रुनेत्रः सपुलकः प्रणतो विनयान्वितः ॥१७॥

एवं ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का जप कर रहे थे, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से पूर्ण तथा ब्रह्मतेज से निरन्तर देदीप्यमान थे ॥६॥ हे नारद! इस प्रकार प्रभायुक्त पौत्र को देखकर ब्रह्मा का मन उस समय हर्षमग्न हो गया। वे अपने को और पुत्र-पौत्र को कृतकृत्य समझने लगे ॥७॥ पश्चात् शुक्र जगत् के विधाता एवं प्रभु ब्रह्मा को देखते ही सहसा उठ खड़े हुए और भयभीत होते हुए अंजली बांधकर उन्हें प्रणाम किया ॥८॥ षोडशोपचार मंगाकर सविधि पूजन किया, तथा परमभक्ति से आगमानुसार उनकी स्तुति आरम्भ की, जो विद्या और मन्त्र के प्रदाता, समस्त सम्पत्ति तथा अपने कर्मों के फल देने वाले एवं विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥९-१०॥ शुक्र की ऐसी स्तुति से जगत्पति ब्रह्मा सन्तुष्ट होकर शीघ्र रथ से उतर पड़े और उनकी सभा को सम्बोधित किया ॥११॥ शुक्र ने उनके बैठने के लिए शिर झुकाकर वह उत्तम सिंहासन प्रदान किया, जो तेज से प्रज्वलित, रम्य और विश्वकर्मा द्वारा सुनिर्मित था ॥१२॥ हे मुने! शुक्र ने ब्रह्मा को प्रणाम करने के उपरान्त कुमार, सनक, क्रतु, वसिष्ठ, मरीचि, सनन्द, सनातन, कपिल, पञ्चशिख, वोढु, अंगिरा, धर्म, मुझे (नारायण) और नर को भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥१३-१४॥ उस धार्मिक ने सादर यथोचित प्रत्येक की पूजा की और उन्हें रत्नसिंहासनों पर बैठाया ॥१५॥ अनन्तर दितिनन्दन और वहाँ के ऋषिसंघ ने प्रसन्नचित्त होकर शास्त्रानुसार ब्रह्मा को प्रणाम किया ॥१६॥ सब का सादर स्वागत करने के अनन्तर कवि (शुक्र) ने अंजली बाँधकर, सजल नेत्र, पुलकायमान शरीर से विनय-विनम्र होकर कहना आरम्भ किया ॥१७॥

१क. ०र्णमुवास स्वात्मजैः सह।

शुक्र उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । स्वयं विधाता भगवान्साक्षाद्दृष्टः स्वमन्दिरे ॥१८॥
साक्षाद्दृष्टाश्च तत्पुत्रा भगवन्तः सनातनाः । तुष्टः कृष्णोऽद्य मामेव परमात्मा परात्परः ॥१९॥
कृतार्थं कर्तुमीशा मां युष्माकं स्वागतं शिशुम् । स्वात्मारामेषु कुशलं प्रश्नमेवं विडम्बनम् ॥२०॥
पवित्रं कर्तुमीशा मां हेतुरागमनेऽत्र वः । अपरं ब्रूथ किंवाऽपि शास्त नः करवाणि किम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

उद्विग्नश्चिरविच्छेदात्त्वां पौत्रं द्रष्टुमागतः । विच्छेदः पुत्रपौत्राणां मरणादतिरिच्यते ॥२२॥
कुशलं ते मुनिश्रेष्ठ पुत्रयोश्चापि योषितः । कुशलं ते स्वधर्माणां काम्यानां तपसामपि ॥२३॥
दिने दिनेऽपरिच्छन्नं श्रीकृष्णार्चनमीप्सितम् । स्वगुरोः सेवनं नित्यमविच्छिन्नं भवेत्तव ॥२४॥
गुर्विष्टयोः पूजनं च सर्वमङ्गलकारणम् । पापाधिरोगशोकघ्नं पुण्यं हर्षप्रदं शुभम् ॥२५॥
अभीष्टदेवः संतुष्टो गुरौ तुष्टे नृणामिह । इष्टदेवे च संतुष्टे संतुष्टाः सर्वदेवताः ॥२६॥
गुर्वविप्रः सुरो रुष्टो येषां पातकिनामिह । तेषां च कुशलं नास्ति विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥२७॥
तुष्टश्च सततं वत्स श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । सर्वान्तरात्मा भगवांस्तव भक्त्या च निर्गुणः ॥२८॥

शुक्र बोले—आज हमारा जन्म सफल हो गया, हमारा जीवन सुजीवन हो गया, क्योंकि आज अपने भवन में साक्षात् भगवान् ब्रह्मा स्वयं दृष्टिगोचर हुए हैं ॥१८॥ और उनके पुत्र—भगवान् सनातन आदि भी—प्रसन्न चित्त से साक्षात् दर्शन दे रहे हैं। इससे आज परात्पर एवं परमात्मा श्रीकृष्ण मुझ पर अत्यधिक प्रसन्न मालूम हो रहे हैं ॥१९॥ मुझ शिशु को कृतार्थ करने में समर्थ आप लोगों का स्वागत है। अपने आत्मा में रमण करने वालों को कुशल पूछना तो बिडम्बना मात्र है ॥२०॥ हमें पवित्र करने के लिए ही आप महानुभावों का यहाँ आगमन हुआ है। हमें बतायें या शासन करें कि मैं क्या करूँ ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे चिरकाल के वियोग के नाते हमें बड़ी उद्विग्नता थी अतः अपने पौत्र (तुम) को देखने के लिए आया हूँ। क्योंकि पुत्र-पौत्र का वियोग मरण से भी अधिक दुःखप्रद होता है ॥२२॥हे मुनिश्रेष्ठ! तुम कुशल से तो हो? तुम्हारे पुत्र, स्त्रियाँ, स्वधर्म तथा काम्य तप कुशलपूर्वक चल रहे हैं न? ॥२३॥ तुम्हारा दिन-प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण का यथेष्ट पूजन और अपने गुरु की नित्य अविच्छिन्न सेवा चलती रहे ॥२४॥ क्योंकि गुरु और इष्टदेव का पूजन करना समस्त मंगलों का कारण होता है, पाप, रोग एवं शोक का नाश करता है और पुण्य, हर्षप्रद तथा शुभ होता है ॥२५॥ गुरु के संतुष्ट होने पर मनुष्यों के इष्टदेव सन्तुष्ट रहते हैं और इष्टदेव के प्रसन्न होने पर समस्त देवगण प्रसन्न होते हैं ॥२६॥ जिन पापियों से गुरु, ब्राह्मण तथा देवता रुष्ट रहते हैं, उनका कुशल नहीं होता है एवं पद-पद पर उनका विघ्न ही होता है ॥२७॥ हे वत्स! तुम्हारी भक्ति से भगवान् श्रीकृष्ण, जो प्रकृति से परे और सभी के अन्तरात्मा एवं निर्गुण हैं, तुम्हारी भक्ति से सतत सन्तुष्ट रहते हैं ॥२८॥

तव तुष्टो गुरुरहं विधाता जगतामपि। मयि तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे तु देवताः॥२९॥
सांप्रतं शृणु मे धीमन्नत्राऽऽगमनकारणम्। प्रेषितस्य सुराणां च विश्वसंहर्तुरेव च॥३०॥
शिवस्य गुरुपुत्रस्य साध्वीं तारां बृहस्पतेः। अपहृत्य निशानाथस्तवैव शरणागतः॥३१॥
शंभुर्धर्मश्च सूर्यश्च शक्रोऽनन्तश्च पुत्रक। आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाश्च दिगीश्वराः॥३२॥
युद्धायाऽऽयान्ति संनद्धास्तिस्रः कोट्यश्च देवताः। नागाः किंपुरुषाश्चैव यक्षराक्षसगुह्यकाः॥३३॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। किराताश्चैव गन्धर्वाः समुद्रपुलिनेऽधुना॥३४॥
तारकामयसंग्रामे मध्यस्थोऽहं सुतैः सह। देहि तारां रणं किंवा त्यज चन्द्रं च कामिनम्॥३५॥

शुक्र उवाच

आगच्छन्तु सुराः सर्वे संनद्धा रणदुर्मदाः। योत्स्ये विना महेशं च सर्वेषां च गुरुं परम्॥३६॥

दैत्या ऊचुः

उभयेषां गुरुः शंभुर्मान्यो वन्द्यश्च सर्वदा। धर्मश्च साक्षी सर्वेषां त्वमेव च पितामह॥३७॥
अन्यांश्च तृणतुल्यांश्च नहि मन्यामहे वयम्। आगच्छन्तु च योत्स्यामो व्रज ब्रूहि जगद्गुरो॥३८॥
कृपया गुरुपुत्रस्य यद्यायाति महेश्वरः। आग्नेयास्त्रं प्रयोक्ष्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे प्रभो॥३९॥

जगत् का विधाता मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुम पर प्रसन्न हूँ, मेरे प्रसन्न होने से भगवान् प्रसन्न हैं और भगवान् के प्रसन्न होने पर सभी देवगण प्रसन्न हैं॥२९॥ हे धीमन्! सम्प्रति मेरे यहाँ आने का कुछ और कारण है, कह रहा हूँ, सुनो। मैं देवगणों और विश्व के संहार करने वाले (शिव) का भेजा हुआ हूँ। शिवजी के गुरुपुत्र बृहस्पति की पतिव्रता पत्नी तारा का अपहरण करके चन्द्रमा तुम्हारी ही शरण में आकर रह रहा है॥३०-३१॥ हे पुत्र! इसी कारण शम्भु, धर्म, सूर्य, इन्द्र, अनन्त, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, दिक्पाल, और दिशाओं के अधीश्वर युद्ध के लिए आ रहे हैं, जिसमें तीन करोड़ देवता, नागवर्ग, किम्पुरुषगण, यक्ष, राक्षस, गुह्यकवर्ग, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, किरात, और गन्धर्वगण अत्यन्त सन्नद्ध होकर इस समय समुद्र के तट पर अवस्थित हैं॥३२-३४॥ इस युद्ध में सनत्कुमार आदि पुत्रों समेत मैं ही मध्यस्थ बनाया गया हूँ, अतः तारा को लौटा दो या युद्ध करो। किन्तु मेरा कहना है कि कामी चन्द्रमा का ही त्याग कर दो॥३५॥

शुक्र बोले—युद्ध के लिए तैयार होने वाले दुर्मदान्ध देवगणों को आने दीजिए, सभी के परमगुरु एक शिव को छोड़कर शेष सभी लोगों से मैं युद्ध करूंगा॥३६॥

दैत्य बोले—शिव जो दोनों (दैत्य-देवगणों) के गुरु, मान्य और सर्वदा वन्दनीय हैं, धर्म (कर्मों के) साक्षी हैं और आप पितामह ही हैं। शेष अन्य देवों को हम लोग तृण के तुल्य भी नहीं गिनते हैं। अतः हे जगद्गुरो! जाओ, उनसे कहो, आवें, हम लोग युद्ध के लिए तैयार हैं॥३७-३८॥ हे प्रभो! यदि शिवभी गुरुपुत्र (बृहस्पति) के ऊपर कृपा करने के नाते आयेंगे, तो सर्वप्रथम आग्नेयास्त्र का प्रयोग करके पश्चात् युद्ध करेंगे॥३९॥

ब्रह्मोवाच

कालाग्निरुद्रः संहर्ता विश्वस्य बलिनां वरः। हे वत्सास्तेन सार्धं च को वा युद्धं करिष्यति ॥४०॥
भद्रकाली जगन्माता खड्गखर्परधारिणी। तया दुर्धर्षया सार्धं को वा युद्धं करिष्यति ॥४१॥
सा सहस्रभुजा देवी मुण्डमालाविभूषणा। योजनायतवक्त्रा च दशयोजनविस्तृता ॥४२॥
सप्ततालप्रमाणाश्च यस्या दन्ता भयानकाः। क्रोशप्रमाणजिह्वा च महालोला भयंकरी ॥४३॥
अतीवरौद्राः संनद्धा भीमाः शंकरकिंकराः। अतिभीमा भैरवाश्च नन्दी चरणकर्कशः ॥४४॥
शिवस्य पार्षदाः सर्वे महाबलपराक्रमाः। वीरभद्रादयः शूराः कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥४५॥
सहस्रमूर्ध्नः शेषस्य फणामण्डलभूषणम्। विश्वं सर्षपतुल्यं च को वा योद्धा च तत्समः ॥४६॥
कालाग्निरुद्रः संहर्ता यस्य शंभोश्च किंकराः। शूलिनस्त्रिपुरघ्नस्य ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥४७॥
यस्य पाशुपतास्त्रेण दुर्निवार्येण पुत्रकाः। भस्मीभूतं भवेद्विश्वं दैत्यानां चैव का कथा ॥४८॥
यस्य शूलेन भिन्नश्च शङ्खचूडः प्रतापवान्। सुदामा पार्षदवरः कृष्णस्य परमात्मनः ॥४९॥
त्रिकोटिसूर्यसदृशस्तेजस्वी परमाद्भुतः। राधाकवचकण्ठश्च सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥५०॥
मधुकैटभयोर्हन्ता हिरण्यकशिपोश्च यः। स च विष्णुः समायाति श्वेतद्वीपात्स्वयं प्रभुः ॥५१॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च संसदि। प्रहस्योवाच दैतेयो दानवानामधीश्वरः ॥५२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! वे कालाग्नि हैं, विश्व के संहर्ता होने के नाते सभी बलवानों में बड़े हैं, इसलिए उनके साथ कौन युद्ध कर सकेगा? ॥४०॥ उनके साथ में रहने वाली जगन्माता भद्रकाली हैं, जो हाथ में खड्ग और खप्पर लिये रहती हैं, उस दुर्द्धर्षा के साथ कौन युद्ध करेगा? ॥४१॥ उस सहस्रभुजा देवी के साथ कौन लड़ेगा, जो मुण्डमाला से विभूषित है तथा जिसका मुख एक योजन लंबा है और दश योजन विस्तृत है। उसके सात ताड़ के प्रमाण भयानक दाँत तथा एक कोश की लपलपाती और भयंकरी जिह्वा है ॥४२-४३॥ अत्यन्त रौद्र और भीषण शंकर के सेवक भी सन्नद्ध हैं, और अति भयंकर भैरव एवं रणकर्कश नन्दी तथा शिवजी के अन्य सभी वीरभद्र आदि पार्षदगण महाबलवान्, पराक्रमी, शूर और करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण हैं। सहस्र शिर वाले शेष भी हैं, जिनके फणा-मण्डल ही भूषण हैं एवं जो विश्व को राई के समान अपने शिर पर रखते हैं। उनके समान कौन योद्धा है? ॥४४-४६॥ हे पुत्र! त्रिपुरहन्ता और ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होने वाले जिस शिव जी के कालाग्नि रुद्र संहर्ता हैं एवं सेवक त्रिशूलधारी हैं, तथा जिनके दुर्निवार पाशुपत अस्त्र से समस्त विश्व भस्म हो सकता है, उनके सामने दैत्यों की क्या गिनती है? ॥४७-४८॥ जिनके शूल से प्रतापी शंखचूड़ छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया, जो परमात्मा श्रीकृष्ण का सुदामा नामक उत्तम पार्षद और तीन करोड़ सूर्य के समान तेजस्वी, परम अद्भुत, कण्ठ में राधा जी के कवच से भूषित एवं समस्त दैत्यों का अधीश्वर था, वे तथा मधु-कैटभ के निहन्ता और हिरण्यकशिपु को विदीर्ण करने वाले स्वयं प्रभु विष्णु भी श्वेतद्वीप से आ रहे हैं ॥४९-५१॥ इस प्रकार उस सभा में कहकर जगत् के विधाता ब्रह्मा चुप हो गये। अनन्तर दानवों के अधीश्वर दैत्य ने हँसकर कहा ॥५२॥